Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

५४

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

"...give me thy inner beauty, Mother–the purity of the spirit!"

Walking across a field, six-year old Gadadhar Chattopadhyaya beheld a vision of exquisite beauty: a flight of snow-white cranes traced against a great black cloud. He went into ecstasy and fell unconscious. From then on this highly sensitive child went through a series of spiritual experiences, studied deeply the holy books of all faiths and was initiated into the true Vedic "dharma" by sage Totapuri who also named him Ramakrishna Paramahamsa. Ramakrishna was love incarnate: he loved the world, the universe—everyone of God's creatures.

Saints like Ramakrishna Paramahamsa are gifted with universal love and compassion. To them, even inanimate objects become alive with God! They serve God through His creation—a service born of the conviction that the entire Universe is filled with God! Sainthood is a universal phenomenon.

MAFATLAL GROUP

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

- प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधि
- पुरुषार्थ-प्रतिपादक
- प्रसन्न-गम्भीर

चिन्तामणि

वर्ष १४ : अङ्क २

वार्षिक मूल्य : आठ रुपये मात्र
एक प्रति : दो रुपया पचास पैसा

संस्थापक : अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज

सम्पादक
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

व्यवस्थापक
सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल', २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग
बम्बई–४००००६

वर्ष १४ : अङ्क २

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

विषयक्रम

स्वस्त्ययन : अथर्ववेद १०१

दास्ययोग श्रीमत् ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी करपात्रीजी महाराज १०२

वार्तिकामृत अ०श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज ११२

महामानव (कविता) क० गोकुलानन्द तैलंग 'निकुञ्ज' १२२

विमर्शनीयशाङ्करभाष्यम् : एक चिन्तन विरक्तशिरोमणि श्रीवामदेवजी महाराज १२३

आत्माभिराम (कविता) क० गोकुलानन्द तैलंग 'निकुञ्ज' १२७

आत्मोल्लास: श्री 'विष्णु' १२८

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर प्राप्त कराये गये कागजपर मुद्रित

उपनिषद् और ज्ञानवाद — श्री रामनारायण त्रिपाठी १३४
फूल — भानुदत्त शास्त्री 'मधुरेश' १४३
अचिन्त्य-चिन्तन — श्री विष्णुकुमार गग्गल १४४
श्रीभक्तिरसायनम् — अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज १४९
सन्त दामाजी महाराजकी यशोगाथा — श्री यशवन्त बलवन्त क्षीरसागर १५९
संन्यास जयन्ती — अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज १६५
स्व० पं० रामगुलाम द्विवेदी : एक संस्मरण — श्री ओमप्रकाश द्विवेदी १७१
निर्लज्जता बनाम सभ्यता — श्री फरहत कमर एम० ए० १७६
मुलाकात — सॉमरसेट मॉम, 'नवनीतसे' १७९
प्रकृतिसे स्वास्थ्यका सम्बन्ध — श्री रामकुमार भुवालका १८०
अखिल ब्रह्माण्डमें जीवन — श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव १८४
मलेरिया ज्वर — श्री रामचन्द्र आचार्य ए. एम. एस. १८९

English

Inspiring anecdotes from Guru Nanak's Life — By : S. K. Tandon 193

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्साहित्य प्रकाशन (पब्लिकेशन) ट्रस्ट

'विपुल' २८/१६, बी० जी० खेर मार्ग, मलाबार हिल, बम्बई–४००००६
फोन : ८१७९७६

पूज्यपाद अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं संस्था द्वारा प्रकाशित अनुपम आध्यात्मिक साहित्य

१. माण्डूक्य-प्रवचन (आगम प्रकरण) १०.००
२. माण्डूक्य-प्रवचन (अद्वैत प्रकरण) ४.५०
३. अपरोक्षानुभूति-प्रवचन ६.००
४. कठोपनिषद्-प्रवचन–१ ९.००
५. कठोपनिषद्-प्रवचन–२ १२.००
६. मुण्डकसुधा ३.७५
७. ईशावास्य-प्रवचन ४ ००
८. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-१ १०.००
९. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-२ १०.००
१०. ब्रह्मसूत्र-प्रवचन-३ १०.००
११. विवेक कीजिये–१ ५.५०
१२. विवेक कीजिये–२ ९ ००
१३. सांख्ययोग (दूसरा अध्याय) ९.७५
१४. कर्मयोग (तीसरा अध्याय) ६.००
१५. ध्यानयोग (छठां अध्याय) ६.००
१६. ज्ञान-विज्ञान-योग (अ. ७) ६.००
१७. विभूतियोग (दसवां अ०) ५.२५
१८. गीता-दर्शन–१ ५.५०
१९. गीता-दर्शन–२ ५.००
२०. नारद भक्ति-दर्शन ९.००
२१. गोपियोंके पांच प्रेम-गीत ०.४०
२२. भागवत विचार-दोहन ३.००
२३. मोहन नी मोहिनी (गुज०) ०.६०
२४. श्रीमद्भागवत-रहस्य ३.७५
२५. कपिलोपदेश ३.७५
२६. व्यवहार और परमार्थ ३.७५
२७. मानव-जीवन और भागवत-धर्म ४.५०
२८. वेणुगीत ३.००
२९. श्री भक्तिरसायनम् १२.००
३०. श्री भक्तिरसायन-प्रपा ३.००
३१. च० नि० आणि ब्रह्मज्ञान (मराठी) १.५०
३२. महाराजश्रीका एक परिचय (गुजराती) १.९०
३३. महाराजश्रीका एक परिचय १.००
३४. आनन्दवाणी, भाग–५ (गुजराती) २.२५
३५. ज्ञान-निर्झर ०.९०
३६. आत्मबोध ३.००
३७. राम-शताब्दी-स्मृति १०.००
३८. श्री अखण्डानन्द स्तव १.००
३९. महाराजश्री चित्रावली ११.००
४०. Glimpses of Life Divine 1.50
४१. Ideal and Truth 5.25

प्राचीन-अर्वाचीन, ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधी पुरुषार्थ-प्रतिपादक प्रसन्न-गम्भीर त्रैमासिक पत्रिका 'चिन्तामणि' वार्षिक शुल्क रु० ८.०० : एक प्रति रु० २.५०

पाठकोंकी सुविधाके लिए ट्रस्ट की भिन्न-भिन्न सदस्यता—श्रेणियां हैं, जिनके अन्तर्गत पूरा साहित्य भेंट स्वरूप एवं कमीशन पर दिया जाता है। कृपया अधिक जानकारी के लिए कार्यालय से सम्पर्क कीजिये।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

स्वस्त्ययन

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः
षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि ।
यैरेव ससृजे घोरं
तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥५॥

अथर्ववेद का० १९, अनु० १, सूक्त ९, मन्त्र ५

मेरे हृदयमें यह जो छठे मन सहित पाँच इन्द्रियाँ निवास करती हैं, वे ब्रह्माके द्वारा अर्थात् चेतन आत्मा नियन्ताके द्वारा अपने-अपने विषयमें प्रवण होनेके लिए बनायी गयी हैं। इन्हीं इन्द्रियोंसे घोर अर्थात् पापावह कर्म किये जाते हैं। इन्हीं इन्द्रियोंके द्वारा अब ऐसे कर्म किये जायँ जिनसे हमारे लिए घोर कर्मोंकी शान्ति हो जाय।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

दास्ययोग

श्रीमत् ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी करपात्रीजी महाराज

इस स्वतन्त्रता-युगमें 'दास्ययोग'-का उपदेश ! पर सचमुच जो भगवान्‌की दासतामें सुख तथा शान्ति है, वह संसारके सम्राट् बननेमें कहाँ ? भगवान् अखिलब्रह्माण्डनायक हैं, उनकी दासतामें सबसे बड़ी विलक्षणता तो यह है कि दास अपनी सच्ची सेवासे उनका सखा ही नहीं, हृदयेश्वर तक बन जाता है। दासोऽहं कहते-कहते सोऽहंकी नौबत आजाती है। गोपी-वस्त्रापहारी भगवान् हठात् दासोऽहंके 'दा'कारको चुरा लेते हैं—

दासोऽहमिति या बुद्धिः
पूर्वमासीज्जनार्दने।
दाकारोऽपहृतस्तेन
गोपीवस्त्रापहारिणा।

भगवान्‌की सेवा कठिन होते हुए भी बड़ी सरल है। वे तो थोड़े हीमें प्रसन्न हो जाते हैं। आत्माराम, आप्तकाम, पूर्णकाम भगवान्‌को धन, जन, विद्या, बल आदिकोंकी अपेक्षा ही क्या है ? सन्देह होता है, यदि ऐसी बात है तब भगवान् स्वयं ही भक्तोंको अपने सर्वस्व-समर्पणका आदेश क्यों करते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि
यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय
तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

हे कौन्तेय ! तुम जो कुछ भी यज्ञ, तप, दानादि लौकिक, वैदिक कर्म-धर्म करते हो, वह सब मुझ सर्वान्तरात्माको समर्पण कर दो। इसका समाधान यही है कि प्रभु स्वयं तो निज लाभ (स्व-स्वरूपभूत अनन्त परमानन्द लाभ) से ही परिपूर्ण हैं, परन्तु भक्तकी कल्याणकामनासे ही उसकी समर्पित सपर्याओंका ग्रहण करुणासे करते हैं; क्योंकि प्राणी जो कुछ भगवान्‌के पादपङ्कजमें समर्पण करता है वही उसे मिलता है। जैसे दर्पणादिके भीतर प्रतिमुख (मुख प्रतिबिम्ब) को यदि कटक-मुकुट-कुण्डलादि भूषण-वसन पहनाकर शृंगार करना हो तो मुख (बिम्ब) का ही शृंगार करना आवश्यक है। बिम्बके शृंगारसे प्रतिबिम्ब अनायास ही शृंगारित हो जाता है; अन्यथा विश्वम्भरके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शिल्पी (कारीगर) भी प्रतिबिम्बको मुकुट-कुण्डलादि पहनानेमें असमर्थ ही रहेंगे।

ठीक इसी तरह कोई भी प्राणी अपने पारलौकिक अभ्युदय, निःश्रेय-सादि पुरुषार्थोंकी प्राप्ति तभी कर सकता है, जब श्रद्धा भक्तिसे प्रभु-पद-पङ्कजकी सपर्या करे। माना, आज कोई साम्राज्य, वैराज्यादि अनेक आनन्द सामग्रियोंसे परिपूर्ण है, परन्तु इस विनश्वर शरीरके पात होनेपर कहाँ जायगा, कैसे और क्या करेगा ? कोई भी ऐसा व्यक्ति या संस्था नहीं है, जहाँ हम अपनी धरोहर रखें और जन्मान्तरमें फिर ग्रहण कर सकें। एक-मात्र यही उपाय है कि भगवान्‌के शास्त्रानुसार यज्ञ-तप-दानादिसे भग-वान्‌की सपर्या करके भगवान्‌में ही उसे समर्पण किया जाय। करुणामय सर्वस्व सर्वसामर्थ्य, सर्वप्रद भगवान् ही प्राणियोंकी भक्ति श्रद्धा सम्पादित आराधनाओंका परम मनोहर फल प्रदान करते हैं। इसीलिए यद्यपि स्वतः नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः के अनुसार प्रभु किसीका पुण्य पाप नहीं ग्रहण करते तथापि अपनी अचिन्त्य अनन्त दिव्य लीला-शक्तिसे भक्त-कल्याण-कामनासे भक्त सम्पादित सम्मानोंको ग्रहण करते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्युत पुनः-पुनः भक्तको प्रोत्साहित करते हैं कि तुम सब कुछ मुझमें ही समर्पित कर दो। भगवान् यह भी कहते हैं कि जो भक्त पत्र, पुष्प, फल, जल मुझको समर्पण करता है, मैं उसे अनन्य आदरसे ग्रहण किम्वा अशन करता हूँ। यद्यपि पत्र, पुष्प, खाद्य पदार्थ नहीं हैं तथापि प्रभु भक्तिरस-परिप्लुत पत्रपुष्पादिकोंको भी खाते हैं। भक्त-भावना-पराधीन, प्रेम-विभोर भगवान् विवेकहीन मुग्ध शिशुके समान पत्रपुष्पादिको भी खा लेते हैं। किम्वा रसिकेन्द्रशेखर, रस-राजमणि भगवान् भक्तिरस-परिप्लुत पत्रपुष्पादिका स्वाद रसनासे ही लेना उचित समझते हैं। तभी तुलसीदल एवं जल-चिल्लुकसे ही भक्तवत्सल भगवान् भक्तोंके हाथ अपने आपको बेच देते हैं।

तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुल्लुकेन च।
विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्या भक्तवत्सलः॥

अहा, इतना ही क्यों, प्रेममय प्रभु तो नवनीत और दधिके लिए प्रेममयी व्रजाङ्गनाओंके घर चोरी करने भी जाते हैं। क्षीरसागर-शायी एवं परमानन्द, सुधासिन्धु किम्वा पूर्णानुराग, रससागर, भगवान्‌को— 'अहीरकी छोहरियाँ छँछिया भर छाँछ-पर नाच नचावती हैं।' किसी दिन नवनीत चुराकर आतप-संतप्त भूमिपर दौड़ते हुए कृष्णको देखकर कोई स्नेह-विह्वला सौभाग्यशालिनी व्रजाङ्गना कहती है—नीतं यदि नवनीतं नीतं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नीतं किमेतेन। आतपतापितभूमौ माधव मा धाव मा धाव। नवनीत चुरा लिया तो क्या हुआ, भले ले लिया, परन्तु हे माधव! आतप(घाम)से तापित भूमिपर मत भागो, मत दौड़ो। एक प्रेमी तो बड़ी सुन्दर सलाह देते हैं—क्षीरसारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया। मानसे मम घनान्धतामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे। हे प्रेममय नन्दनन्दन! यदि आपने नवनीत चुराकर शंके डरसे पलायन ही स्वीकार किया, तब तो फिर आओ नाथ! मेरे गाढ़ज्ञानान्धकार-समाच्छन्न मानसमें मैं तुम्हें छिपा लूँ बस, फिर तुम्हें कोई नहीं देखेगा। यह आप्तकाम, पूर्णकाम, आत्माराम प्रभुकी सकामता केवल भक्त मनोनुगामिनी लीला शक्तिके प्रभावसे ही है।

नमो नवघनश्याम कामकामित-देहिने, कमलाकामसौदामकण-कामुकगेहिने। अनन्तकोटि कन्दर्पोंके मनोहरण करनेवाले नव घनश्याम भगवान्‌के लिए नमस्कार है, जो कि कमलाकी कामनावाले सुदामाके तण्डुल-की कामना करनेवाले हैं।

प्रभुको प्रसन्न करनेके लिए धन, उत्तम कुल, रूप, तप, व्रत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धियोग ये सब पर्याप्त नहीं हैं। गजेन्द्रपर तो इन पूर्वोक्त धनादिके विना भी भगवान् सन्तुष्ट हो गये। इतना ही नहीं, भगवत्पादारविन्दविमुख, द्वादश-गुण-सम्पन्न ब्राह्मण भी नगण्य है और भगवत्पादपङ्कजानुरागी श्वपच भी आदरणीय होता है। कारण वह भूरिमान विप्र आत्मशोधन भी नहीं कर सकता और वह श्वपच तो कुल सहित अपनेको मुक्त कर लेता है। यद्यपि कहा जा सकता है कि साक्षात् भगवान्‌ने श्रीमुख-से ही कहा है कि—ब्राह्मणां जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह। विद्यया तपसा तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः। समस्त प्राणियोंमें ब्राह्मण जन्मसे ही श्रेष्ठ है, फिर विद्या, तपस्या, सन्तोष-रूपमें ही कलाओंसे युक्त ब्राह्मणोंके विषयमें तो कहा ही क्या जाय! न ब्राह्मणान्मे दयितं, रूपमेतच्चतुर्भुजम्। सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम्। अर्थात् मुझे अपना यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणसे प्रिय नहीं है। सर्ववेदमय ब्राह्मण है और सर्वदेवमय मैं हूँ। फिर ब्राह्मणसे श्वपचकी श्रेष्ठता कैसे कही जा सकती है? तथापि भक्ति बिना अत्यन्त पूज्य ब्राह्मण भी निन्द्य है और भक्तियुक्त अति साधारण श्वपच भी आदरणीय है। यह कहकर भक्तिका ही माहात्म्य-वर्णन किया गया है। यहाँ ब्राह्मणकी निकृष्टता वर्णनमें तात्पर्य नहीं है, वास्तवमें सिद्धान्त तो यह है कि जैसे गौ और तुलसी, अश्वत्थ, गंगाजल आदि पदार्थ भले ही अपनी दृष्टिसे अकृत-कृत्य हों, परन्तु पूजकोंके तो परम कल्याणके ही निदान हैं। गौ स्वयं पशु होनेके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कारण चाहे आत्मकल्याण करनेमें असमर्थ ही हो, परन्तु शास्त्रानुसार उसके रोम-रोममें देवताओंका निवास है और उसके पञ्चगव्य तथा रजसे सर्व पापक्षय अवश्य ही होता है। इसी तरह जन्मना श्रेष्ठ ब्राह्मण पूजकोंका कल्याण कर सकनेपर भी यदि स्वयं स्वधर्मनिष्ठासे भगवत्परायण न हुआ तब तो वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता। पूजकोंकी श्रद्धा सुदृढ़ करनेके लिए शास्त्रोंमें सर्वगुण-निरपेक्ष जन्मसे ही ब्राह्मणको श्रेष्ठ बतलाया गया है और ब्राह्मण कहीं जन्मना ब्राह्मणके ही गर्वमें स्वधर्म बहिर्मुख न हो जायँ अतः उसके लिए यह कहा गया है कि भगवान्से विमुख ब्राह्मणकी अपेक्षा तो भगवद्भक्त श्वपच भी श्रेष्ठ है। इस तरह निन्दापरक वचन ब्राह्मणोंको सावधान करनेके लिए हैं और स्तुतिपरक वचन पूजकोंकी श्रद्धा स्थिर करनेके लिए हैं। परन्तु मोहवश आज ब्राह्मण तो स्तुतिपरक और पूजक निन्दापरक वचनोंको ही सामने रखते हैं।

अस्तु; यह दास्ययोगका ही अद्भुत महत्त्व है कि जिसके बिना विप्र भी अकृतार्थ रहता है और जिसके सम्बन्धसे श्वपच भी कुल सहित कृतार्थ हो जाता है। धन, जन, देह, गेहादि निज सर्वस्व तथा अपने आपको प्रभुमें समर्पण करके श्रद्धा, स्नेह पुरःसर प्रभुपादपङ्कज सेवन ही दास्ययोग है। प्रभुके परमानन्द रसात्मक मधुर स्वरूप, गुण, चरित्रादिमें मनकी गाढ़ आसक्ति ही मुख्य सेवा है। इसीकी सिद्धिके लिए वर्णाश्रम धर्म, यज्ञ, तप, दान आदि परमावश्यक हैं। तन, मन, धनसे भगवत्सेवामें तत्पर सेवक सिवा भगवान्के किसी वस्तुको अपना नहीं समझता। सभी कर्म, धर्म, समाज-सेवा आदि सब कुछ भगवान्के ही लिए करता है। निखिल विश्वको अपने भगवान्का ही रूप समझकर उसकी सेवा करता है। सोते जागते सदा ही अनन्य सेवकके समस्त व्यापार केवल स्वामीके लिए ही होते हैं। भगवान्का विश्व और उनके भक्त भगवदीय हैं। भगवदीय सेवासे भगवत्सेवा प्राप्त होती है। इसलिए भगवान्का दास भगवदीय सेवामें बड़ा स्नेह रखता है। वास्तवमें यदि किसी सौभाग्यशालीको निष्कपट दास्ययोग मिल जाय फिर तो कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रहता। भगवद् पादपङ्कजमें जिसका मनोमिलिन्द आसक्त है वह तो अनन्य निश्चिन्त रहता है। जो दशा पुत्रवत्सला माँके उत्सङ्गलालित शिशुकी है, वही दशा सेवककी है। वे तो प्रभुके भरोसे ही अनन्य असोच रहते हैं।

सेवक सुत पितु मातु भरोसे।
रहहिं असोच बनै प्रभु पोसे॥

भगवान्में आत्मनिवेदन करनेसे बढ़कर शोक-निवृत्तिका और उपाय ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्या ? अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके माता-पिता भगवान् सेवकके शरणागतको फिर आँच कहाँ ? शरणागतके लिए ही तो भगवान्का मा शुचः यह आश्वासन है। सेवा-भक्तिका ऐसा महत्त्व है कि भगवद्भावापन्न मुक्त सन्त भी मुक्तिकी ओर न देखकर सेवा-भक्ति चाहते हैं। तभी तो श्री प्रह्लाद पूर्ण कृतकृत्य होकर भी भगवदीयों तथा भगवान्की सेवाका वर माँगते हैं।

भक्तशिरोमणि प्रह्लादके आख्यान-में दास्ययोगका बड़ा ही महत्त्व मिलता है। प्रह्लादने दैत्य बालकोंको भी भगवत्तत्त्वका उपदेश कर दिया। यह सुनकर दैत्यराज हिरण्यकश्यप अत्यन्त कुपित होकर कहने लगा—'हे दुर्वि-नीत, तू उद्धत होकर मेरे शासनका उल्लंघन करता है। आज तुझे यमपुर पहुँचा देता हूँ। जिसके क्रोधसे तीनों लोक काँपते हैं, मूढ़ ! निर्भयकी तरह उसका शासनोल्लंघन तूने किसके बलसे किया ?' प्रह्लादने कहा ! 'राजन् वह केवल मेरा ही बल नहीं, किन्तु आपका भी वही बल है और समस्त बल-वानोंकी बलवत्ता उसीपर निर्भर है, बुध्यादि स्थावरान्त समस्त चराचर जगत् जिनकी माया-शक्तिके संकेतमें सचेष्ट होता है और जो अपनी शक्तियोंसे ही समस्त विश्वका पालन-पोषण संहार करते हैं, वही भगवान् हमारे आपके तथा सभीके बल हैं। पिताजी ! आसुरभावको त्यागकर सर्वत्र परिपूर्ण, एकरस, निर्विशेष, समब्रह्ममें मन स्थिर कर लेनेपर फिर शत्रु रहते ही नहीं। यदि कोई शत्रु है तो वह कुमार्गगामी अथवा अस्वा-धीन मन ही है। जिसने अपने मन, बुद्धि, इन्द्रियादि कार्य-करण-संघातपर नियन्त्रण करके सर्वत्रास्थित, निर्विशेष, समब्रह्ममें अपने आपको परिनिष्ठित-कर लिया, उसने अच्युतका सर्वोत्तम समर्हण कर लिया। अपने परमानन्द निधानका अपहरण करनेवाले मन सहित पञ्च ज्ञानेन्द्रिय रूप छः शत्रुओं-को विना जीते ही लोग दशों दिशाओं-पर अपनी विजय समझते हैं। परन्तु जो सर्वत्र समभावमें स्थित जितात्मा साधुजन हैं, उनके शत्रु ही कहाँ हैं क्योंकि शत्रु तो अपने ही मोहसे बनते हैं।'

क्रुद्ध होकर दैत्यराजने कहा 'रे मूर्ख बालक ! दिखला तो वे तेरे भगवान् कहाँ हैं ?' नतमस्तक होकर भक्त प्रह्लादने उत्तर दिया 'वे कहाँ नहीं हैं' वे सर्वत्र और सर्वस्वरूप हैं। यदि भगवान् पुरुषोत्तममें मेरी प्रीति है और वेद-शास्त्र यदि प्रमाण हैं, तो स्तम्भाभ्यन्तरवर्ती भगवान्का प्राकट्य हो—भक्तिश्चेत्पुरुषोत्तमे यदि दृढ़ा वेदः प्रमाणं यदि। स्तम्भाभ्यन्तर-वर्तिनो भगवतः स्यात्पूर्णमालो-कनम्। प्रह्लादकी 'भगवान् सर्वत्र और सर्वस्वरूप हैं' ऐसी प्रतिज्ञा होते ही भगवान् विचारने लगे कि भक्तने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रतिज्ञा कर दी। बस, अब हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन आदि शेष अवयव चतुष्टयका कार्य मैं प्रत्यक्ष ही प्रकट होकर पूर्ण करूँगा। अर्थात् दूसरेके प्रति किसी परोक्ष वस्तुका सिद्ध करनेके लिए पञ्च अवयवोंसे युक्त परार्थानुमानका प्रयोग करना पड़ता है। जैसे 'पर्वतो वह्निमान्' पर्वतमें वह्नि है, यह प्रतिज्ञा है, परन्तु इस प्रतिज्ञा मात्रसे काम नहीं चल सकता—न हि प्रतिज्ञामात्रेण वस्तुसिद्धिः। हेतु आदि अन्य साधनोंको भी आवश्यकता अनिवार्य होती है। अतः उक्त प्रतिज्ञा-सिद्धिके लिए 'धूमात्' इस हेतुका प्रयोग होता है। इसी तरह यो यो धूमवान् स स वह्निमान्। यथा 'महानस' यह उदाहरण तथा 'चायं' यह उपनय, 'तस्मात्तथा' यह निगमन प्रयुक्त किये जाते हैं। सारांश यही कि प्रतिज्ञा-सिद्धिके लिए हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमनका प्रदर्शन करना चाहिए। परन्तु यहाँ तो सर्व शक्तिमान् भगवान्ने सोचा कि अब हेत्वादि उपन्यासका कष्ट भक्तको न देकर मुझे अपनी व्यापकता और सर्वात्मताको प्रत्यक्ष ही प्रमाणसे सिद्ध कर देना चाहिए। इसीसे पाषाणमय स्तम्भसे प्रकट होकर भगवान्ने अपनी व्यापकता प्रदर्शित की है। अत्यन्त विरुद्ध नर और सिंह रूपमें प्रकट होकर अपनी सर्वरूपता भी प्रकट की। स्तम्भसे प्रकट विकराल नृसिंह रूपमें भगवान्को देखकर प्रह्लाद हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—'हे नाथ! प्रिय वियोग, अप्रिय संयोगसे उत्पन्न शोक-मोहरूप अग्निसे नाना योनियोंमें देदह्यमान होते हुए सुखबुद्धिसे दुःखरूप ही दुखौषधको ग्रहण करता हूँ। अतः नाथ, कृपाकर मुझे अपने 'दास्य-योग'का ही उपदेश करें। मैं आपका दास होकर सर्वसुहृद अपने प्रियतम परदैवत भगवान्की ब्रह्मादि गीत लीला कथाओंका आस्वादन करता हुआ आपके पाद-पङ्कज निवासी हंसोंके संग द्वारा गुणोंसे दूरकर अनायास दुर्गम भवाटवीको तर जाऊँगा। लोकमें संतप्त प्राणियोंके ताप-प्रतीकारका जो उपाय प्रसिद्ध है, आपकी उपेक्षामें वह सब व्यर्थ ही हो जाता है। कहा जाता है कि बालकका संरक्षण करनेवाले माता-पिता हैं। उनके बिना अनाथ बालकका जीवन कैसे रहे, परन्तु देखा यह जाता है कि माता-पिताके शतशः संरक्षणका प्रयत्न करते रहनेपर भी बालककी रक्षा नहीं होती। यह प्रसिद्ध है कि समुद्रमें डूबते हुएको संत्राण देनेवाली नाव है, परन्तु नाव सहित भी कितने प्राणी डूबते दिखाई देते हैं। रोगीका प्राण-रक्षक औषध है, परन्तु कहीं शतशः चिकित्सकोंके उपचार होते हुए भी रोगीका मरण देखा जाता है। अतः स्पष्ट है कि प्राणीके लिए हर समय केवल एक आप ही समाश्रयणीय हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इतना ही नहीं, किन्तु जिस देशमें, जिस कालमें, जिन हेतुओंसे, जिस लिए, जिसका, जिससे जो भी कल्याण होता है, वह सब, सब-का-सब आपका ही स्वरूप है।'

'कालात्मासे संक्षुब्ध गुणों द्वारा माया अति बलवान् चञ्चल मनका निर्माण करती है। वही मन छन्दोमय है और उसीमें ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राणपञ्चक, बुद्धि आदि षोडश अंश समर्पित हैं। यही संसारचक्र है, इससे आपकी कृपाके बिना कौन तर सकता है। हे नाथ, आप अपने स्वरूपभूत तेजसे ही विश्वकी समस्त रचनाशक्तिको स्वाधीन रखते हैं। मायासे षोडशार मनोमय चक्रमें पड़कर पिस रहा हूँ। दयामय अब आप अपने ही चरणोंमें ले लो, प्रभो मैं प्रसन्न हूँ।'

'हे नाथ! अखिल लोकपालोंकी आयु, सम्पत्ति एवं नानाविध ऐश्वर्य तथा वैभवोंसे जिन्हें लोग चाहते हैं, उनसे मैं परिचित हो गया हूँ। मेरे पिता हिरण्यकश्यपके भ्रूविजृम्भणमात्रसे शेष भी विलुलित हो जाते थे। जहाँ ऐसे प्रबल प्रताप-सम्पन्न हिरण्यकश्यपके भी संहारमें विलम्ब न हुआ फिर और किसपर आस्था या विश्वास किया जाय! इसलिए नाथ मैं ऐन्द्र, माहेन्द्र तथा ब्राह्म पद पर्यन्तके भी इन वैभवोंको नहीं चाहता। दयामय! बस मैं तो केवल आपके श्री चरणारविन्दानुरागियोंका संनिधान ही चाहता हूँ। कहाँ श्रवणमात्र रमणीय मृगतृष्णिकोदकके समान सांसारिक क्षुद्र पदार्थोंकी वासनाएँ और कहाँ यह अनेक रोग, दोष, शोक, मोह आदि व्याधियोंका जन्मस्थान कलेवर? परन्तु प्राणी यह जानता हुआ भी इन अनन्त अनर्थोंसे विरत नहीं होता। वैषयिक क्षुद्र आनन्द बिन्दुओंसे प्रचण्ड कामानलके प्रशमनमें व्यग्र होकर सुख और शान्तिका स्वप्न देखता है।

हे कृपामय! तमःप्रधान असुर कुलमें उत्पन्न होनेवाला कहाँ मैं और कहाँ आपकी मङ्गलमयी कृपा! यह प्रसाद, जो कि आपने मेरे शिरपर अपने 'श्री हस्तारविन्द'का स्थापन किया है, देवताओं तथा रमाको भी दुर्लभ है। नाथ! मुझ नीचपर अनुकम्पा करनेपर भी आपमें विषमताकी कुकल्पनाका स्थान नहीं है। जो-जो कल्पवृक्षका सेवन करते हैं, उन्हें अभीष्ट प्राप्त होता है और जो उपेक्षा करते हैं वे फलसे वञ्चित रहते हैं। ऐसे ही अग्निके सानिध्यसे शैत्यकी निवृत्ति होती है और उसके बिना निवृत्ति नहीं होती, इतनेपर कल्पवृक्ष और अग्नि पक्षपाती नहीं कहे जा सकते। उसी प्रकार जिसने ही आपका अनुगमन किया, आप उसीको कृतकृत्य कर देते हैं।

जो सुनि सरन सामुहे आये।
सकृत प्रणाम किये अपनाये॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पर जो हतभाग्य सन्निधानमें ही नहीं आता उसके लिए क्या किया जाय ? तथापि वासनाओंके प्रसङ्गमें संसार अन्धकूपमें पड़े हुए इस दीनको देवर्षि नारद द्वारा आपने स्वीकार कर लिया। फिर मैं आपके भृत्योंकी सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ। हे देव ! अज्ञजन कहा करते हैं कि दृश्यजगत् या मुझसे भिन्न कौन परमेश्वर है ! अर्थात् दृश्य प्रपञ्चसे व्यतिरिक्त परमेश्वर नामकी कोई वस्तु है ही नहीं। परन्तु विज्ञजन ठीक इसके विपरीत कहते हैं कि भगवान्से भिन्न प्रपञ्च नामकी वस्तु ही क्या है। वास्तवमें परमात्म-रहस्यज्ञ प्रपञ्चको नहीं देखता और प्रपञ्चासक्त प्राणी परमात्म-तत्त्वको नहीं देखता। एकके लिए परमात्मा अप्रकाशमयी रात्रि है, दूसरेके लिए प्रपञ्च ही अप्रकाशमयी रात्रि है—**एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च।**

'हे प्रभो ! समस्त चराचर प्रपञ्च-में एक आप ही हैं, क्योंकि इस प्रपञ्चके आदि, अन्त तथा मध्यमें भी आप ही रहते हैं। जैसे तरङ्गके आदि अन्तमें अब जल ही है, तब मध्यमें भी जलसे भिन्न तरङ्ग नामकी वस्तु क्या है। घटादि मृण्मय पात्रोंकी उत्पत्तिमें पहले पहल मृत्तिका ही थी और उन पात्रोंके नष्ट होनेपर भी सिवा मृत्तिकाके और कुछ नहीं रहता।

आदावन्ते च यन्नास्ति
वर्त्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽ-
वितथा इव लक्षिताः ॥

जो आदिमें नहीं होता तथा अन्तमें भी नहीं होता, केवल मध्यमें ही हासिल होता है वह मिथ्या होते हुए भी सत्य-सा मालूम पड़ता है। निखिल विश्वकी उत्पत्तिके पहले पहल केवल आप ही आप थे। जैसे मृत्तिकाकी ही अवस्थाविशेष घटादि अपनी उत्पत्तिके पहले-पहल मृत्तिका सामान्य ही होते हैं। उसी प्रकार सत्की अवस्था विशेष आकाशादि उत्पत्तिके पहले सत् सामान्य ही होता है। जैसे मिट्टीसे भिन्न घट और जलसे भिन्न तरङ्ग कोई वस्तु नहीं है। किन्तु मिट्टी तथा जलकी अवस्थाविशेष ही है, वैसे ही सत्की अवस्थाविशेष ही यह समस्त दृश्य है। सत्के विना निखिल विश्व असत् हो जाता है अर्थात् कुछ भी नहीं रहता है। किसी भी पदार्थमें जब सत्ता या स्फूर्ति न हो तब तो वह निःसत्व और निःस्फूर्ति ही हो जाता है। चाहे प्रकृति हो चाहे परमाणु, जब उसका अस्तित्व और स्फुरण ही नहीं, तब उसका मूल्य ही क्या है ?

सबका जिसमें अन्तर्भाव हो जाय और और सबमें जिसका अन्तर्भाव न हो, वही सबका कारण या अधिष्ठान हो सकता है। जैसे मिट्टीके सभी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पात्रोंका मिट्टीमें अन्तर्भाव हो जाता है, परन्तु मिट्टीका अन्तर्भाव उन पात्रोंमें नहीं होता, वैसे ही स्वप्रकाश सत् या अखण्ड सत्य बोधके भीतर सबका अन्तर्भाव हो जाता है, परन्तु विनश्वर दृश्य जड़ प्रपञ्चमें अखण्ड सत्य बोधका अन्तर्भाव नहीं हो सकता। अतः सभी दृश्य प्रपञ्चका महाकारण या अधिष्ठान अखण्ड अनन्त स्वप्रकाश बोध ही है। सत् और बोधके बिना प्रपञ्चकी स्थिति, प्रवृत्ति तथा जीवन वैसे ही असम्भव है जैसे जलके बिना तरङ्गका। इसलिए जिसके बिना किसी पदार्थका मानना असम्भव हो जाय उसका स्वीकार करना सभीके लिए अनिवार्य है। सिद्धान्त दृष्टिसे विज्ञजन देखते ही हैं कि तरङ्ग और घटाकाश चाहे जितना उछलें-कूदें, वे किसी क्षणमें जल और महाकाशसे पृथक् नहीं हो सकते। ठीक वैसे ही संसारके चेतनाचेतनात्मक सभी तत्त्वोंका आपसे पृथक् अस्तित्व ही नहीं फिर आपके विश्वमें आपसे पृथक् अहंता, ममता करना मोहके अतिरिक्त और क्या है? प्रभो! विश्व कारणता और विश्वरूप कार्य सब आपमें पर्यवसित होते हैं। अतः आप ही कार्य और आप ही कारण हैं। इतने पर भी आप इन दोनोंसे पृथक् हैं। अर्थात् आपके अखण्ड, अनन्त, स्वप्रकाश, सद्रूप, बोध स्वरूपमें कार्य-कारणात्मक प्रपञ्चका अन्तर्भाव है। परन्तु आपका अन्तर्भाव उक्त प्रपञ्चमें नहीं हो सकता। कार्य एवं कल्पित पदार्थोंका अन्तर्भाव कारण एवं अधिष्ठानमें होता ही है। कूटस्थ, असङ्ग, निरवयव, निर्विकार, एकरस, परमतत्त्वका सुख दुःख मोहात्मक प्रपञ्च रूपमें परिणाम भी नहीं बन सकता। जैसे अज्ञानकी महिमासे रज्जुका सर्प, धारा, माला आदि रूपमें विवर्त्त होता है वैसे ही अनादि अनिर्वचनीय माया शक्तिकी महिमासे भगवान्का भी प्रपञ्च रूपमें विवर्त्त हो जाता है। इसीलिए माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यथार्थो अर्थात् आत्मबुद्धिपर बुद्धि केवल मायाका ही विलास है—

मैं अरु मोर तोर तै माया,
जेहि बस कीन्हेंउ जीव निकाया।

हे प्रभो! आप इस निखिल विश्वको अपनेमें ही विलीन करके और विश्व मूल जड़ निद्रा शक्तिको पीकर निज स्वरूपमें स्थित प्रलयाम्बुधिमें शयन करते हैं। आपके ही नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माने अपना और अपने आधारभूत लोकपद्म जिसमें चतुर्दश लोककी कल्पना है, का मूल ढूँढ़नेके लिए कारण महासमुद्रमें प्रवेश किया। जब दिव्य शत वर्षपर्यन्त ढूँढ़नेपर भी कमलनालके उद्गम-स्थानका पता न मिला, तब उसी कमलपर बैठकर उन्होंने तप करना आरम्भ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया। तपसे विशुद्ध भाव द्वारा आपके परम सूक्ष्म दिव्यरूपको इस प्रकार देखा जैसे पृथिवीमें सूक्ष्म गन्ध व्याप्त होता है। अंकुर उत्पन्न हो जानेपर बीजका पृथक् अस्तित्व नहीं दिखायी देता, यद्यपि, अंकुर, नाल, स्कन्ध, शाखा, उपशाखा, पत्र, पल्लव पुष्प, फल, सर्वरूपसे सबमें बीज ही विद्यमान है तथापि बीजका पृथक् उपालम्भ नहीं होता। अतः सहज और सुगम उपाय परमात्मदर्शनका यही है कि कार्यमें ही कारण एवं कारणातीत परम तत्त्वका दर्शन किया जाय। अपनेसे भिन्न देहादिको आत्मा मानकर और निज अन्तरात्मा भगवान्को अपनेसे भिन्न मानकर प्राणी आत्माको ढूंढ़नेके लिए भटकता है। जैसे अति सूक्ष्म गन्ध ही पृथिवीका कारण तथा उसमें व्याप्त है, वैसे ही उस विश्वपद्म तथा ब्रह्मामें आप ही भरपूर हैं।

'हे नाथ यह मन पापोंसे दूषित हो रहा है। अतएव आपकी मङ्गलमयी कथा-सुधामें आसक्त नहीं होता। वह कामोंसे आतुर तथा भय शोक एवं नाना तृष्णाओंसे व्याकुल है। फिर नाथ! ऐसे मनपर आपकी सूक्ष्मगतिका विमर्श कैसे करूँ।' हे अच्युत! जिह्वा एक तरफ असन्तुष्ट होकर खींचती है, उपस्थ दूसरी ओर, त्वक्, उदर एवं श्रवण अपनी ओर खींचते हैं। यही दशा घ्राण और चपल नेत्रोंकी है। जैसे एक गृहपतिको बहुत-सी सपत्नी अपनी-अपनी ओर खींचती हैं और उसका जीवन संकट-पूर्ण बना देती हैं, ऐसे ही ये चञ्चल इन्द्रियाँ अपनी-अपनी ओर खींचती हुई व्याकुल कर देती हैं। इस तरह इस भव-वैतरणीमें पड़े हुए जन्म-मरणसे संतप्त वैर-विग्रहमें फँसे हुए मूढ़जनोंका आप ही उद्धार करें। हे अखिल गुरो! आपको इसमें कुछ प्रयास भी नहीं, कारण आप तो अनायास ही अनन्त ब्रह्माण्डका उत्पादन, पालन और संहरण करते हैं। फिर आर्त्तबन्धो, हम मूढ़ोंके उद्धरणमें आपको क्या श्रम है। हे नाथ! यद्यपि मैं तो इस भव-वैतरणीसे नहीं उद्विग्न हो रहा हूँ, कारण कि मेरा मन तो आपके पराक्रम, गुणादि-गान महामृत सागरमें डूबा हुआ है तथापि मुझे शोक उन लोगोंके लिए है जिनका मन आपके चरित्रामृतसे विमुख है और जो विषयेन्द्रिय सम्प्रयोगजन्य मायामय सुखके लिए नानाप्रकारके भारको वहन कर रहे हैं। हे देव! प्रायेण मुनीन्द्रगण अपनी मुक्तिकी कामनासे परमात्मनिष्ठ होकर विजन वनमें मौनव्रत धारण करते हैं, परन्तु मैं तो इन कृपणोंको छोड़कर अकेला नहीं मुक्त होना चाहता हूँ। दयामय! भीमभवार्णवमें भटकते हुए प्राणियोंका संत्राण बिना आपकी कृपा हो नहीं सकता, अतः नाथ आप ही कृपा करें।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वार्तिकामृत

बृहदारण्यकवार्तिकसारके अनुसार

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

शंका यह है कि श्रुतिमें कर्मको ही मुक्तिका साधन कहा गया है। कर्मसंन्यासको ही मुक्तिसाधन माननेपर उस वचनका विरोध होगा। अच्छा तो अब इसका समाधान सुनिये। यह बात किसने कही कि कर्म मुक्तिके साधन नहीं हैं? निश्चय ही कर्म मुक्तिके साधन हैं। वेदानुवचन यज्ञ दान तपस्यासे विविदिषा उत्पन्न होती है, चित्तके राग-द्वेष नष्ट होते हैं। संस्कारोंके रूपमें कर्मकी बड़ी महिमा है, परन्तु अन्तःकरण शुद्धि रूप अपना काम करके वह अपना काम समाप्त कर देता है। प्रयोजन पूर्ण होनेपर उपायका बोझ नहीं ढोया जाता। नदी पार कर लेनेपर नावको अपने साथ कौन ले जाता है? अतः शुद्धिके बाद सिद्ध वस्तुके अनुभवके समय कर्मोंकी गति नहीं है। हमें इस बातसे विरोध है कि कर्मके अतिरिक्त मुक्तिका और कोई साधन नहीं है। त्यागसे मुक्ति, ज्ञानसे मुक्ति—यह तो स्पष्ट रूपसे श्रौत-वचन ही है। यह ठीक है कि कर्मकाण्डमें केवल विधि-निषेध ही होते हैं—यह करो, यह मत करो, परन्तु ब्रह्मकाण्डका यह विषय नहीं है। वहाँ स्वतःसिद्ध आत्मा ब्रह्मकी एकताका वर्णन है। जैमिनिका यह कहना कि श्रुतिके जिन वचनोंमें विधिनिषेध नहीं हैं, वे भी उन्हींके लिए उपयोगी अर्थात् निन्दा-स्तुतिके द्वारा उनके अङ्ग हैं। यह कर्मकाण्डके लिए ही है, क्योंकि जैमिनिका विषय ब्रह्म नहीं है, कर्म ही है। व्यास अपना दर्शन ब्रह्म-जिज्ञासासे प्रारम्भ करते हैं, जैमिनि धर्म-जिज्ञासासे। दोनोंका विषय भिन्न-भिन्न होनेसे परस्पर कोई विरोध नहीं है। धर्मसे अप्राप्त सुख रूप स्वर्गका निर्माण होता है, वह सीमित और विनाशी होता है। तत्त्वज्ञानसे नित्य प्राप्त स्वतः सिद्ध अविनाशी आत्माका ज्ञान होता है। अतः ज्ञानमें कर्मका प्रवेश नहीं है।

माना कि विधिविधानके भक्त आत्मज्ञानके साथ ही उसको जोड़ना चाहते हैं। उनसे यह पूछना चाहिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि अच्छा, विधिविधानसे आत्मज्ञानमें कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होता है? ब्रह्ममें पुरुषार्थता सिद्धि हो या ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होनेके अनन्तर विरोधी वृत्तियाँ कुछ बिगाड़ न सकें अथवा अविद्याकी निवृत्तिके लिए किंवा विद्याफलकी सिद्धिके लिए! पहली बात इसलिए युक्तियुक्त नहीं है कि ब्रह्म किसी विधि या आदेशके बलपर पुरुषार्थ नहीं है। वह तो प्रमेयका अर्थात् ब्रह्मका स्वभाव ही है। वह विज्ञान आनन्दस्वरूप अपना आत्मा ही है। वही वेदान्त-सम्मत परम पुरुषार्थ है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान हो जानेपर संसारकी क्लेशजनक परिस्थितियाँ उसमें कुछ बिगाड़ कर सकती हों और उनसे बचानेके लिए विधि विधानकी आवश्यकता है—यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि ब्रह्मज्ञान एक बार जहाँ उदय हो गया वहाँ हो ही गया, उसको कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता। वामदेवको गर्भदशामें प्रतिबन्धकी निवृत्ति होनेपर ब्रह्मज्ञानका उदय हुआ। वहाँ परिस्थिति क्या थी? मूत्र पुरीष जरायुसे परिवेष्ठित नरकके समान स्थानमें पड़े हुए थे। विरोधी परिस्थियोंसे ज्ञानकी कोई हानि नहीं हुई। क्योंकि बुद्धिकी सत्यके प्रति पक्षपात होता है। सत्य बुद्धि प्रबल होती है। वह मिथ्या बुद्धिसे कभी बाधित नहीं होती। प्रत्युत सत्य बुद्धि ही मिथ्या बुद्धिको बाधित कर देती है। अतः संसारके सहस्र-सहस्र क्लेश भी आत्मज्ञानमें कोई बाधा नहीं डाल सकते।

तीसरी बात अविद्याके निरासके लिए या एक बार अविद्याका निरास हो जानेपर तो दूसरी बार अविद्या न आजाये, इसके लिए भी विधि-विधान या आदेशकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तत्त्वज्ञान होनेपर वह अविद्याको निवृत्त न कर सके, ऐसा नहीं हो सकता। इसके लिए एक दृष्टान्त है। एक था राजकुमार। बाल्यावस्थामें ही व्याधोंने उसका अपहरण कर लिया। उन्हींमें ही वह पाला-पोसा गया, बढ़ा। बालकमें कुछ ऐसे चिह्न थे जिसके कारण वह पहचान लिया गया, यह राजकुमार है। अब जब उससे कहा गया कि तुम व्याध नहीं हो, राजकुमार हो, तो 'मैं व्याध हूँ' उसका यह भ्रम निवृत्त हो गया। अविद्याकी निवृत्ति हो गयी। वह राजकुमार तो था ही, अपनेको राजकुमार अनुभव करने लगा। यह अज्ञानी जीव देह-इन्द्रियादिके सङ्गसे अपनेको कर्ता-भोक्ता मान बैठा है, तत्त्वमस्यादि महावाक्यसे इसको ब्रह्मात्म-बोध हो जाता है। फिर कार्यसहित सम्पूर्ण अविद्या नष्ट हो जाती है।

चौथी बात कि ब्रह्मविद्याके फलकी सिद्धिके लिए विधिको आवश्यकता है, यह कथन भी यथार्थ नहीं है। क्योंकि विधिफल और विद्याफल—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं। एक दूसरेसे अलग-अलग हैं। विधिविधानके चार फल हैं—उत्पत्ति, प्राप्ति, संस्कार और विकार। उदाहरणके लिए यदि आपके घरमें चावल नहीं है तो खेती करके उन्हें उत्पन्न कर लीजिये। यदि खेती नहीं कर सकते तो उन्हें मूल्यसे, उधारके रूपमें या माँगकर दूसरेसे प्राप्त कर लीजिये। यदि उनमें कुछ गन्दगी हो तो संस्कार करके शुद्ध कर लीजिये। कच्चे हों तो उन्हें पकाकर रूपान्तरित कर लीजिये। ये चारों विनाशी होते हैं और यही कर्मसे सम्पन्न होते हैं। मुक्ति तो स्वतःसिद्ध आत्माका स्वरूप है। नित्य प्राप्त होनेपर भी अज्ञानसे अप्राप्त हो रही है। अतः उसके लिए विधि-विधानकी कोई आवश्यकता नहीं है।

अब इस प्रश्नका समाधान देखिये कि भले ब्रह्ममें कर्मविधिका सम्बन्ध न हो, उपासना-विधिका शेष तो मानना ही पड़ेगा। पहले ब्रह्म वस्तुका बोध होगा और उसके बाद विधिके अनुसार उसकी उपासना करनी पड़ेगी। यह पूर्वपक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि ब्रह्म अविद्यारहित आत्मवस्तु ही है। उसकी सिद्धि कर्मानुष्ठान या उपासनानुष्ठानसे नहीं होती, क्योंकि वह स्वयंसिद्ध है। वह न कारक है, न उनसे सम्पन्न होनेवाली क्रिया है और न क्रियाका फल ही है। अतएव ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें विधि न होना दूषण नहीं है, भूषण है। वेदान्तोंमें इसकी प्रशंसा की गयी है।

आप विचारिये तो सही, एक ही पुरुष यह भी सोचता है कि मैं वेद-शास्त्रके आदेशसे नियुक्त हूँ और साथ ही मैं ब्रह्म भी हूँ—यह दोनों बात एक व्यक्तिमें कैसे हो सकती है? ये दोनों तो परस्पर विरोधी भाव हैं। जैसे स्वामी अपने सेवकको नियुक्त करता है वैसे सेवकके द्वारा कोई स्वामी नियुक्त नहीं हो सकता। जैसे वन्दीजन सोते हुए राजाको उसके विरदका गान करके जगाते हैं, वैसे ही वेदशास्त्र आत्मब्रह्मका सम्बोधन करते हैं।

श्रुति आत्मरूपसे भी ब्रह्मका बोध न करती है। उसमें भावनाकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भावनामें तीन अंश होते हैं—साध्य, साधन और इतिकर्तव्यता। वह ब्रह्ममें इसलिए आवश्यक नहीं है, क्योंकि ब्रह्ममें फलान्तरकी अपेक्षा नहीं है। वस्तुतः बात यह है कि तत् पदका लक्ष्यार्थ प्रपञ्चाभावसे उपलक्षित शुद्ध ब्रह्म है, वही त्वं पदका लक्ष्यार्थ है। इस बोधके अनन्तर भावनाकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

जब स्वर्गादि रूप फलकी इच्छा अधिकारी पुरुषको आज्ञा-पालनके स्थानपर ले जाकर डाल देती है, तब उसे करण और कर्तव्य दोनोंकी अनिवार्य आवश्यकता होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'स्वर्गकामो यजेत्'। इसमें पूर्वोक्त अंशत्रयवधि भावनाकी आवश्यकता होती है। वेदान्तमें केवल ज्ञान ही पुरुषार्थ है। सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका सार है—मुक्तिस्वरूप आत्मा। उसमें स्वतः किसी प्रकारका अनर्थ नहीं है। जैसे अनात्म वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा होती है, आत्मपदार्थकी प्राप्तिके लिए वैसी इच्छा नहीं होती। अतएव मुमुक्षा या जिज्ञासामें भावनाका लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं है। इच्छा न होनेके कारण साधन और इतिकर्तव्यता दोनों अपने आप ही निवृत्त हो जाते हैं। क्योंकि विना किसी व्यवधानके आत्मा स्वयं निःशेष पुरुषार्थ है।

जिस सिद्धान्तमें आत्मा और मुक्तिमें केवल अज्ञान ही व्यवधान है वहाँ तो आपकी बात ठीक बैठ जाती है, परन्तु जिस सिद्धान्तमें जीवको ब्रह्मका विकार या अवयव माना जाता है उस मतमें केवल अज्ञानकी निवृत्तिसे मुक्ति नहीं हो सकती, कुछ न कुछ कर्म एवं उपासना करनी पड़ेगी। पूर्वपक्षीकी इस शंकाका समाधान किया जाता है।

यदि विकार और अवयव ब्रह्ममें सच्चे हों और जीव वैसा ही हो तो मुक्ति न कर्मसे हो सकती और न ज्ञानसे। क्योंकि वास्तविक स्वभावकी निवृत्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती। यदि स्वभाव निवृत्त हो जाता है तो उसको वास्तविक कहना ही अनुचित है। यदि संसारित्व विकारित्व अवयवत्व अविद्या कल्पित हैं तो अविद्याको मिटानेके लिए विद्या ही प्राप्त करनी चाहिए, कर्म नहीं। यह सारी कल्पना-जल्पना अविद्यासे है। उसीसे सब कुछ हो रहा है। निःश्रेयस स्वतः पूर्ण है, अविद्यासे ही अपूर्ण भासता है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अतः ज्ञानसे ही उसका नाश हो जाता है। अविद्या नहीं तो पूर्ण ही पूर्ण है। इसलिए निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिए विधिविधान निरर्थक हैं।

यहाँ एक विचार उपस्थित होता है। श्रुति-स्मृतियोंमें विविध प्रकारके वर्णन मिलते हैं। कहीं जगत्को ब्रह्मका एक पाद कहा है तो कहीं जीवका अग्निके विस्फुल्लिगके समान उल्लेख है। गीता ब्रह्मसूत्रमें अंश है। कहीं ब्रह्मके किरणोंका उल्लेख है। ऐसी स्थितिमें प्रतीत होता है कि जीव परमात्माका अवयव, अंश या विकार है। फिर तो बिना कर्मके मोक्ष नहीं हो सकता। इसका क्या उत्तर है?

पूर्वोक्त शंकाका समाधान लीजिये। परमात्माका एक देश अथवा विकार जीव है। ठीक है, तो वह ब्रह्मांश ब्रह्मसे अभिन्न है अथवा भिन्न? अभिन्न है तो ब्रह्मकी प्राप्ति मोक्ष है या भेदकी निवृत्ति? यदि अभिन्न मानते हैं तो ब्रह्मकी प्राप्ति अप्राप्त नहीं, नित्य प्राप्त है। फिर कर्म क्या करेगा? ज्ञानसे ही मोक्ष

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो जायेगा। भेद निवृत्तिरूप मोक्ष भी कर्मसाध्य नहीं है, भेद-निवर्तक ज्ञानसे ही साध्य है।

यदि जीव ब्रह्मका विकार है तो मोक्ष क्या है? विकारी ब्रह्मकी प्राप्ति या विकारी और विकारके भेदकी निवृत्ति? पहली बात मानें तो कार्य कारणका अभेद होनेसे मुक्ति सिद्ध ही है साध्य नहीं है। फिर कर्मसे क्या प्रयोजन? कार्य और कारणका भेद परमार्थ नहीं हुआ करता। भेद भी आविद्यक है तो ज्ञानसे ही निवृत्त होगा, कर्मसे नहीं। ब्रह्ममें न अवयव है न विकार। कहनेका अभिप्राय यह है कि जैसे ब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं वैसे जीव भी सच्चिदानन्दघन है। मूल बात यह है कि सभी दार्शनिक मोक्षकी प्राप्ति तत्त्वज्ञानसे ही मानते हैं, कर्म उपासना या भावनासे नहीं। वेदान्तज्ञानसे ब्रह्मनिष्ठा सम्पन्न होती है, उसमें वाणी, मन, शरीरकी निःशेष प्रवृत्तियोंका उपरम हो जाता है। विरक्त मुमुक्षु एवं जिज्ञासु पुरुषकी ब्रह्मविषयक प्रज्ञासे ही ब्रह्मनिष्ठा हो जाती है। उसके लिए कर्मान्तरकी आवश्यकता नहीं है।

कर्मकाण्डियोंका यह एक और आक्षेप है। वेदमें अर्थकी दृष्टिसे एक-वाक्यता स्वीकार करना आवश्यक है, अन्यथा वह उन्मत्त वाक्यके समान अप्रमाण हो जायेगा। जब विद्वान् पुरुष उपक्रम-उपसंहारकी पर्यालोचना करते हैं तो समग्र वेदका एक अर्थमें ही परम तात्पर्य निकलता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदोंमें कर्म और ज्ञान दोनोंका ही वर्णन है। अतएव कर्मका निःशेष अनुष्ठान कर लेने पर ही ज्ञानका अधिकार प्राप्त होता है, केवल ब्रह्मविषयक व्युत्पत्ति विवेक आदि होनेसे ही नहीं।

इस पूर्वपक्षका समाधान ध्यान देने योग्य है। आप सोचिये तो सही, क्या एक मनुष्य निःशेष वेदार्थका अनुष्ठान करनेमें समर्थ हो सकता है? भले ही वह अपना पूरा-का-पूरा जीवन उन्हींमें लगा दे। ऐसी स्थितिमें ज्ञानका अधिकारी तो कभी कोई हो ही नहीं सकेगा। सारे-के-सारे वेदान्त अधिकारी अभावमें अप्रमाण होकर धरे-के-धरे ही रह जायेंगे। अतः शुद्धचित्त पुरुष ज्ञानका अधिकारी होता है। सभी कर्म-चित्त संस्कारके लिए हैं और संस्कार पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंसे भी परिपक्व हो जाते हैं। निखिल अनुष्ठानको समाप्त करके ज्ञानाधिकार प्राप्त करनेमें एकवाक्यता नहीं है। जब कर्मोंके फलस्वरूप वैराग्य उत्पन्न हो जाये तो ज्ञानका अधिकार प्राप्त हो जाता है। एक प्रश्न और है। ज्ञान आप किसलिए चाहते हैं? अदृष्टकी उत्पत्तिके लिए या दृष्टके लिए? यदि आप अग्नि-होत्रादिके द्वारा अदृष्ट स्वर्गादिके लिए ज्ञान चाहते हों तो अधिकारका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विचार आवश्यक है, क्योंकि अनधिकारीके द्वारा किया हुआ सकामकर्म निष्फल हो जाता है। दृष्टार्थ होनेपर भी वह दृष्ट क्या है? केवल अविद्याका नाश अथवा कुछ और? अधिकार सम्पदासे आप और क्या पाना चाहते हैं? अविद्याका नाश तो केवल विद्यासे ही हो जाता है और कुछ चाहिए नहीं, फिर अधिकार क्या करेगा? मोक्ष ऐसा पुरुषार्थ है जो आत्मा ब्रह्मकी एकताका ज्ञान होते ही अविद्याका नाश होकर प्राप्त हो जाता है। अब और क्या चाहिए? हृदय-ग्रन्थिका भेदन, संशय-समूहका उच्छेद, कर्म-त्रिपुटीका क्षय, यह सब अविद्यानाश ही है। असंग आत्माका ज्ञाता अपने आपमें कोई ग्रन्थि अनुभव नहीं करता। ग्रन्थि अर्थात् अनात्माको सत्, चित्, आनन्दरूप आत्मा समझना और अनात्माके धर्म दुःख, जड़ता और असत्पनेको अपने ऊपर थोप लेना, यह अध्यास अविद्याके कारण है। ब्रह्मात्म-विद्यासे इसीका उच्छेद होता है।

अच्छाजी, आप कहते हैं कि ज्ञानका फल केवल अज्ञानकी निवृत्ति है, तो अब हम आपसे पूछते हैं वेद वेदार्थके अध्ययनशील सब पण्डित मुक्त क्यों नहीं हो जाते? इसका उत्तर यह है कि प्रतिबन्ध क्षयके बिना वेद वेदार्थका अध्ययन कर लेनेपर भी ब्रह्मविद्याका उदय नहीं होता, अतएव वे लोग मुक्त नहीं होते। ब्रह्मसूत्रके सर्वापेक्षाधिकरणमें व्यासने इसका निर्णय किया है। यदि कोई प्रतिबन्ध प्रस्तुत न हो तो इसी जीवनमें ब्रह्मविद्याका उदय हो जाता है। यदि प्रतिबन्ध न हों तो उनकी निवृत्ति होनेपर जन्मान्तरमें या लोकान्तरमें तत्त्व ज्ञान होता है। यह प्रतिबन्ध भी भूत वर्तमान और भावी तीन प्रकारका होता है। वामदेव शुकदेव आदिको भूत प्रतिबन्ध था, उसकी निवृत्ति होनेपर उन्हें गर्भमें ही ज्ञान हो गया, वहाँ अविद्यानिवृत्तिकी कोई भी सामग्री उपस्थित नहीं थी। जो लोग बहुत पढ़ते-लिखते हैं उनमें वर्तमान प्रतिबन्ध ज्ञानोदयमें रुकावट डालता है। जिनको जन्मभर श्रवण करते बीत जाये और ज्ञान न हो तो उनमें भावी प्रतिबन्ध समझना चाहिए। हम लोगोंको जो ज्ञान होता है यह ज्ञानाभास है, ऐसी शंका करके प्रतिबन्धको कल्पना नहीं करनी चाहिए। भला कोई अपने अनुभवपर भी शंका करता है? यदि वेद शास्त्रके श्रवणसे संशय विपर्यय रहित आत्मबोधकी प्राप्ति हो गयी तो और अनुभव क्या होता है जिसको तुम चाहते हो? अनुभव बोधका फल नहीं है बोध ही है। बोधका फल बोध ही है कि उससे भिन्न? भिन्न होगा तो अबोध हो जायेगा। जो बोध होनेपर भी उसको अनुभव नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मानता, उसकी नासमझी जड़ता अत्यन्त प्रवल है, उसको शास्त्र भी कैसे समझा सकते हैं ? अपने अनुभवमें जिसको शंका है वह प्रतिवन्धसे ग्रस्त है। हमें अपने बोधमें कोई शंका नहीं है। 'भला प्रतिवन्ध हमारे वोधमें क्या विगाड़ सकता है या वोधको कैसे रोक सकता है ?

अज्ञानकी पहचान है राग—यह श्रेष्ठ पुरुषोंकी वाणी है। राग रहते वोधको वोध कैसे माना जाय ? आपका यह प्रश्न ठीक है। जो रागको आत्म-धर्म मानता है वह तत्त्वज्ञ नहीं है। यदि राग जड़का धर्म है तो उससे चिदात्माका क्या विगड़ता है ? यही तो हम समझना चाहते हैं कि आत्मा ही रागादिरहित है, अनात्मा नहीं। ठीक है, आत्मा तो ज्ञानके पहले भी रागरहित ही था, ज्ञान होनेपर क्या विशेषता आयी ? यदि ऐसा कहते हो तो तुम्हारा कल्याण हो। हम यथार्थवादीका आदर करते हैं। यदि तुम पहले यह वात नहीं जानते थे तो अव वेदान्त-वचनोंसे जान लो। ज्ञानसे अज्ञाना-वरणका नाश होता है। प्रश्न यह है कि इससे आत्मामें क्या विशेषता उत्पन्न हुई ? उत्तर है---कोई नहीं। चित्तमें क्या विशेषता उत्पन्न हुई ? वोधका उदय हुआ—यही उत्तर है। यदि कहो कि हमारे चित्तका राग तो नष्ट हुआ ही नहीं, न हो यह तो वहुत जरा-सी वात है। यह क्यों नहीं कहते कि मेरे चित्तकी जड़ता नष्ट नहीं हुई ? यदि तुम्हारी यह धारणा है कि चित्तका स्वभाव ही जड़ता है, वह कैसे मिटेगी, तो क्या राग चित्तका स्वभाव नहीं हैं ? यह क्या कहींसे उधार लिया है ? किसने तुम्हारे चित्तमें वाहरसे लाकर राग डाल दिया है ? अच्छा भोग्य-पदार्थके सौन्दर्य विज्ञानसे राग आता है तो आप युक्ति और प्रमाणसे भोग्य-के दोषका विचार कीजिये। भोग्यके गुण-विचारसे राग होता है, भोग्यके दोष-विचारसे वैराग्य होता है। यह वात तो ब्रह्मज्ञानके पहले भी थी और वादमें भी रहेगी। परमानन्दका बोध-होनेपर रागकी निवृत्ति हो जाये—ऐसा सम्भव नहीं है। यह नहीं है कि परमा-नन्द-सौन्दर्यबोध है और दूसरा सव कुछ दुष्ट है। परमानन्दकी मात्रा तो सबमें ही है। अतः किञ्चित् सुखबोध भी सवमें है। क्या हाथी मिल जाने पर घोड़ा छोड़ दिया जाता है ? परन्तु घोड़ा रोगी है यह जाननेपर उसका त्याग हो जाता है। ब्रह्मज्ञान ब्रह्म-तत्त्वका बोधक है। वह दूसरी वस्तुओं-का दोष नहीं वताता, क्योंकि बोधका विषय एक ही होता है, वह ब्रह्म हो या दोष हो।

अजी; जव ब्रह्मको जान लिया तो सव कुछ मिथ्या हो गया, ठीक है। फिर तो आपका राग भी मिथ्या हो गया। राग सत्य है और भोग्य प्रपञ्च मिथ्या है, यह तो शास्त्रजन्य बुद्धि नहीं है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फिर तो आगामी जन्म भी मिथ्या ही है, क्यों ? ठीक है । यदि आप आत्माको ब्रह्म जानते हैं तो भोग, राग, जन्म सभी मिथ्या हैं । जो शास्त्रसे तत्त्वज्ञान प्राप्त नहीं करते, उनके अनेक जन्म हुआ करें । वस्तुस्थिति यह है कि ज्ञानसे मोक्ष है अज्ञानसे जन्म-मृत्यु है ।

अच्छा ब्रह्मज्ञानी जी; आपने बहुत प्रयास करके रागका होना सिद्ध कर दिया, तब इसको रहने दिया जाये; मिटानेकी तो कोई आवश्यकता नहीं है । ना ! मेरे प्यारे मित्र, हम इतना प्रयास करके रागको सिद्ध करना या प्राप्त करना नहीं चाहते । पहले हमारे अभिप्रायको समझिये । आप वस्तुत: ब्रह्म हैं, परन्तु आपके अन्त:करणमें राग आजाता है । उस रागसे आपका इतना द्वेष हो गया है कि आप उसके कारण अपनेको परमार्थ ब्रह्म माननेमें हिचकिचाते हैं । कालिख लग जानेसे हीरेको फेंक रहे हैं । अरे बाबा, राग आजाये तो आजाये, आप अपनी ब्रह्मनिष्ठाको मत छोड़िये । बिच्छूसे तो भगे और साँपके मुँहमें पाँव डाल दें, यह उचित है ? आप रागसे डरते हैं और अज्ञान, असत्य, दु:ख एवं मृत्युके मुँहमें पाँव डाल देते हैं, ब्रह्मनिष्ठा छोड़ देते हैं । आप अपने अनन्त जीवनमें जीते रहिये । दु:स्वप्नके कारण जाग्रतकी हत्या मत कीजिये । हमारा अभिप्राय केवल इतना ही है कि अनात्मनिष्ठ आगन्तुक दोषोंके कारण आप अपने ब्रह्मस्वरूप होनेमें कोई शंका मत कीजिये ।

आप क्या कहना चाहते हैं ? यही ना, कि ब्रह्मनिष्ठा प्राप्त हो जाने पर रागद्वेषादि दोषोंके लिए अवसर ही कहाँ है ? ठीक है । आपका कल्याण हो । आप स्वयं ब्रह्मनिष्ठ एक विरक्त पुरुष हैं । हम यह मानते हैं कि संसारमें दोष-दृष्टि होती है, वैराग्य होता है, शम, दम आदि सम्पत्ति आती है । अत: बोधके पूर्व ही साधन-सम्पदा आजानेसे वैराग्य हो जाता है । बिना उसके तो ज्ञानमें अधिकार ही नहीं है । आपका कहना ठीक है, वैराग्य हो और रहे, आपके मुँहमें घी-शक्कर, किन्तु कर्मोंकी गति विचित्र है । पूर्व-पूर्व संस्कारोंके अनुसार वासनाएँ अपने रूप प्रकट करती रहती हैं । अतएव यदि पूर्व पाप-वासनाके कारण कोई राग-द्वेष आदि दोष आ ही जायें तो उसकी चिकित्सा कर लेनी चाहिए । इन रोगोंकी अचूक महौषधि दो ही हैं—एक दोषदृष्टि, दो ब्रह्मदृष्टि । जो प्रारब्ध कर्मजन्य असाध्य रोग हैं वे तो केवल भोगसे ही मिटते हैं । आप ध्यान दीजिये कि कोई ब्रह्मचिन्तन करने बैठा और उसी समय पूर्व संस्कारके कारण राग-लेशका उदय हो गया । अब वह उसकी चिकित्सा छोड बैठे, पुन:-पुन: ब्रह्मानुसन्धान न करे, रागमें दोषदृष्टि न करे, ऐसी स्थितिमें वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने ब्रह्मज्ञानपर ही सन्देह करने लगे, हाय-हाय मैं ब्रह्म हूँ कि नहीं, तो उसे कभी निश्चय नहीं हो सकता। उसकी ब्रह्मनिष्ठा कभी बन नहीं सकती। श्रीकृष्णने गीतामें ज्ञानके तीन प्रतिबन्ध बतलाएँ हैं—अज्ञान, अश्रद्धा और संशय। मान लें कि अज्ञान रहे तब भी श्रद्धा तो करे। श्रद्धालु नहीं होगा तो संशयालु हो जायेगा। देखो जी, मैं अपनी और अपने जैसोंकी बात करता हूँ। शास्त्रके अनुसार जाने, श्रद्धा करे और निश्चय कर ले, उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

प्रतिबन्ध न होनेपर ज्ञान तत्काल अज्ञानको नष्ट कर देता है। ज्ञानका फल जन्मान्तर या लोकान्तरमें अदृष्ट-रूपसे नहीं होता। वह इसी जीवनमें भोजन करनेपर साक्षात् अपरोक्ष तृप्तिके समान दृष्ट ही होता है। भले वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान न करे, परन्तु मुक्तिके इच्छुक जिज्ञासुको जैसे तृप्ति-फलक भोजनादिमें अधिकार होता है वैसे ही तत्त्वज्ञानमें भी अधिकार होता है। आप किसीको अनधिकारी कहकर उसका तिरस्कार मत कीजिये।

यह मुक्तिकी कामना भी क्या है? यदि आप प्रमाण द्वारा मुक्तिका स्वरूप नहीं जानते हैं तो कामना कैसे होगी? अज्ञात वस्तुकी कामना तो होती ही नहीं। यदि आप मुक्तिका स्वरूप जान गये तब तो वह नित्य प्राप्त आत्म-स्वरूप ही है, फिर भी मुक्तिकी कामना नहीं होगी। पूर्वपक्षी यह जो मुक्ति-कामनाके प्रति असम्भावना प्रकट करता है, वह युक्तियुक्त नहीं है; क्योंकि सभी बुद्धिमान् प्राणी ऐसा सुख चाहते हैं जो सभी देशोंमें और सभी कालोंमें प्राप्त हो। कौन नहीं चाहता कि हमें सर्वदा अविनाशी सुख मिलता रहे, सर्वव्यापी परिपूर्ण सुख मिलता रहे। ऐसा सुख केवल मोक्ष-सुख ही है। अन्यसे प्राप्त होनेवाला सुख ऐसा नहीं हो सकता। वह तो कभी कहीं मिलेगा, कभी कहीं नहीं मिलेगा। संसारके सभी बुद्धिमान् मनुष्य प्रीतिका उत्कर्ष चाहते हैं। वह लोकसे मिले, परलोकसे मिले, दृष्टसे मिले, अदृष्टसे मिले, सुख-को बाँधकर कोई पाना नहीं चाहता। परमानन्दमें ही प्रीतिका उत्कर्ष होता है, अन्यत्र नहीं। श्रौत सिद्धान्तमें केवल मुक्ति ही परमानन्द रूप है। आप स्वयं समझ सकते हैं कि जो मनुष्य सम्पूर्ण अनर्थ एवं दुःखोंका उच्छेद चाहता है, आत्यन्तिक सुखकी प्राप्ति चाहता है, वह तात्पर्य वृत्तिसे मुक्ति ही तो चाहता है। सभी लोग मुक्ति चाहते हैं। यहाँ तक कि जो स्वर्गसुखादि चाहता है वह भी वस्तुतः मुक्ति ही चाहता है।

मुमुक्षा उस कक्षामें पहुँचा देती है जहाँ कटाक्षसे भी दूसरेकी वीक्षा नहीं सुहाती। दुःखसे मुक्ति और सुख-प्राप्ति तो सब चाहते हैं, परन्तु जो साधन-साध्य होता है वह स्वर्गादि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुख विनाशी होता है। परन्तु मोक्ष अक्षय सुख है। क्योंकि वह पहलेसे विद्यमान रहता है, प्रमाणके द्वारा उसकी अभिव्यक्ति ही होती है।

प्रश्न यह है कि विनाशी सुखको तो कोई पुरुषार्थ नहीं मानता, हम बड़ी तृष्णासे प्रीति प्राप्त करनेके लिए चलते हैं और उसके लेशमात्रसे ही चिपक जायें, यह कैसे हो सकता है? आपका प्रश्न ठीक है, परन्तु स्वर्ग शब्द किसी वस्तु, व्यक्ति, लोक अर्थात् सीमित सुखका ही वाचक नहीं है। वस्तुतः स्वर्ग शब्दका अर्थ परमानन्द ही है। स्वर्ग उसे कहते हैं जिसमें दुःखका लेश भी प्रवेश नहीं करता। वह दुःखसे ग्रस्त नहीं है, विनाशी नहीं है, सबको अभिलाषाका विषय है, उस सुखका ही नाम स्वर्ग है। अतः स्वर्ग मोक्ष ही है। फिर तो आप फँस गये। स्वर्ग मोक्ष है और उसकी प्राप्तिके लिए अग्निहोत्रादि कर्म करना चाहिए। कर्मसे मोक्ष सिद्ध हो गया ना! नहीं, नहीं महाशय, कर्मसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती। कर्म-फलकी एक सीमा होती है, परिमाण होता है, अमुक देशमें अमुक कालमें इतना अमुक कर्म कर लो, सात जन्मतक लक्ष्मी, सरस्वतीके प्रिय ब्राह्मण बनोगे। अतः स्वर्ग शब्दसे कौन-सा स्वर्ग? विनाशी या अविनाशी? शास्त्रोंके द्वारा इसका निश्चय कर लीजिये।

मनुष्यकी तृष्णा आत्मसुखकी ओर-से मुँह मोड़कर दूसरी वस्तुमें सुख-प्राप्तिके लिए ले जाती है। कोई पशुसे सुख चाहता है, कोई वर्षासे, इनकी गिनती नहीं हो सकती। इसीसे वेदोंमें भिन्न-भिन्न वस्तुओंके द्वारा सुख प्राप्त करनेके लिए विविध इष्टियोंका वर्णन है। कुछ भूमियाँ भी ऐसी हैं जिन्हें स्वर्ग शब्दसे कहा जाता है। उस स्वर्गकी प्राप्तिके लिए अग्निहोत्र-आदि कर्म होते हैं। जैसे अन्नके लिए खेती होती है, वैसे ही विनाशी सुखोंकी प्राप्तिके लिए कर्म होते हैं। कर्मजन्य सुख मोक्ष सुख नहीं है। अतः मुमुक्षुको कर्मत्याग कर देना चाहिए और मुमुक्षा-जिज्ञासासे युक्त होकर ब्रह्मानुसन्धान करना चाहिए।

आप तो ब्रह्मानुसन्धानमें लग रहे हैं, परन्तु पूर्वपक्षीको यह अत्यन्त साहस जान पड़ता है। साहस अपराध है, उसका दण्ड मिलता है। साहस क्या है? प्रत्यक्ष श्रुति विधिके तात्पर्यसे युक्त कर्मका विधान करती है कि जीवनपर्यन्त अग्निहोत्रका विधान करना चाहिए। उसको आप अकारण ही त्याग रहे हैं। वेद अपौरुषेय हैं। किसी जीवकी मतिसे उत्प्रेक्षित नहीं हैं। उनकी प्रामाणिकतामें कोई सन्देह नहीं है। आप उनका त्याग करेंगे तो अपराधी हो जायेंगे। नहीं महाशय, कर्मका त्याग साहस नहीं है, आत्मा एवं ब्रह्मकी एकताके बोधकी निष्ठाका त्याग ही सबसे बड़ा अत्यन्त साहस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

है। इससे बड़ा अपराध और कोई नहीं है, क्योंकि उपनिषदें प्रत्यक्ष शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षुका वर्णन करके संन्यासका विधान करती हैं। विरक्तके लिए ही श्रवण-मनन है। त्यागके बिना ठीक-ठीक श्रवण-मनन होगा ही नहीं। अतः ब्रह्मानुसन्धान और कर्मानुष्ठानमें ब्रह्मानुसन्धान ही स्वीकार करने योग्य है। यदि भली भाँति विचार करेंगे तो कर्मत्याग उचित लगने लगेगा। वेदमें परस्पर विरुद्ध उपदेश अर्थात् व्याघात-दोष नहीं है। कर्म या ज्ञान, दुविधा मत कोजिये। त्याग, निर्वेद, प्रव्रज्याका प्रत्यक्ष वर्णन वेदोंमें प्राप्त होता है। आपको लोक, परलोकका अल्प-विनाशी—अपूर्ण सुख चाहिए तो कर्म कीजिये, परन्तु अविनाशी परिपूर्ण आत्मस्वरूप परमार्थ-सुख चाहिए तो ज्ञान प्राप्त कोजिये। इसलिए जो ब्रह्मरूपमें प्रवेश करना चाहता है, उस जिज्ञासुका कर्मत्यागमें अधिकार है। जो अपनेको कर्ता जानता-मानता है और साधन-साध्य वस्तुको प्राप्त करना चाहता है, उसका कर्मत्यागमें अधिकार नहीं है। इसका अभिप्राय है कि कर्म-फल अनित्य है, मुक्ति नित्य है और आत्मा ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे ही नित्य प्राप्त मुक्तिके प्रतिबन्ध दूर होकर उसकी अभिव्यक्ति होती है।

महामानव !

कौन कहे नश्वर तू, अचिरन्तन क्षीयमाण,
विगलित जलबुद्बुद्वत् आप्यायित अनुपल रे।
मर्त्य मनुज-तनुज नहीं, तू सन्तत अमृत-पुत्र,
सृष्टि-बीज-सम्पोषित तेरा अन्तस्तल रे।
तू अनन्त शक्ति-स्रोत, ऊर्जस्वित कण कणशः,
ज्योतिर्मय क्षण क्षणशः, चेतन रूपोज्ज्वल रे।
अवगुंठित लुंठित मति, कुंठित गति-सा निरुद्ध,
आज महामानव तू, विगलित क्यों मनोबल रे !

—क० गोकुलानन्द तैलंग
'निकुंज'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विमर्शनीयशांकरभाष्यम् : एक चिन्तन

विरक्तशिरोमणि श्रीवामदेवजी महाराज

चतुर्थ-विरोध

४. गीता ७.२६ के उपक्रममें मायाको ज्ञानका आवरक नहीं माना, तथा गीता ५.१५में अविद्याको ज्ञानका आवरक माना है। एवं प्रक्रिया ग्रन्थोंमें भी माया उपाधिको सर्वज्ञताका तथा अविद्या उपाधिको अल्पज्ञताका सम्पादक माना है। इससे अति स्पष्ट हो जाता है कि परस्परविरुद्ध ज्ञानावरक अनावरक स्वभाव, तथा परस्पर विरुद्ध सर्वज्ञता अल्पज्ञता सम्पादक होनेके कारण माया और अविद्या एक पदार्थ नहीं। अतः माया और अविद्या दोनों पर्यायवाची भी नहीं हो सकते। किन्तु सूत्र १.४.३ में दोनोंको पर्यायवाची कहा है। तथाहि—

नासौ योगमाया मदीया सती ममेश्वरस्य मायाविनो ज्ञानं प्रतिबध्नाति। (गीता ७.२६)

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं विवेकविज्ञानं तेन मुह्यन्ति। (गीता ५.१५)

अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी। (सूत्र १.४.३)

विरोध-परिहार

भाष्यविरोधप्रदर्शक विद्वान्ने जो भाष्य-पंक्तियाँ उद्धृत की हैं, उनमें-से किसीमें भी यह नहीं लिखा कि माया और अविद्या एक पदार्थ नहीं। जब उद्धृत पंक्तियोंमें-से किसीमें भी यह लिखा ही नहीं कि माया और अविद्या एक नहीं, तब माया तथा अविद्याको एक बतानेवाले भाष्य वाक्यका विरोध भी किस वाक्यसे कहा जा सकता है? अर्थात् किसीसे नहीं। ऐसी दशामें भी माया तथा अविद्याविषयक भाष्यवाक्य-विरोध कहना या लिखना महाभूल है।

यदि कहा जाय कि यद्यपि भाष्यमें माया तथा अविद्याकी एकताका निषेध तो नहीं तथापि भाष्यमें मायाको ईश्वरके ज्ञानका अनावरक और अविद्याको जीवके ज्ञानका आवरक कहा है। तथैव प्रक्रिया ग्रन्थोंमें मायाको ईश्वरनिष्ठ-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वज्ञता तथा अविद्याको जीवनिष्ठ अल्पज्ञताका हेतु कहा है। अतः परस्पर विरुद्ध स्वभावाली माया अविद्याकी अनेकता अर्थात् सिद्ध होनेसे उस अनेकतासे विरुद्ध एकताके बोधक भाष्यवाक्योंमें परस्पर विरोध भी कहा ही जा सकता है।

उपरोक्त कथन भी सम्भव नहीं, क्योंकि यदि जीव ईश्वर इन दोनोंमें-से किसी एकके ही ज्ञानके आवरक तथा अनावरक अविद्या तथा मायातत्त्वको कहा जाता तो एक ही उलूक पक्षीके चक्षुके आवरक प्रकाश, तथा अनावरक तम-की अनेकताकी भाँति इन दोनोंकी भी अनेकता सिद्ध हो जाती। किन्तु ऐसा नहीं कहा गया। अपितु ईश्वरके ज्ञानका अनावरक मायाको तथा जीवके ज्ञानका आवरक अविद्यातत्त्वको कहा है। अतः मनुष्योंके चक्षुके अनावरक तथा उलूक पक्षीके चक्षुके आवरक प्रकाशकी भाँति माया अविद्याकी भी एकता ही सिद्ध हो सकती है, न कि अनेकता। अतः इन दोनोंकी एकता बोधक भाष्य वाक्योंसे किसी प्रकारका विरोध नहीं।

एक ही एकान्त प्रदेश, कामीके लिए कामोद्दीपक, विरक्तके लिए मनकी एकाग्रता तथा वैराग्य-वृद्धिका हेतु होता है। एक ही अग्नि, चकोरका भोजन तथा पोषक, अन्य प्राणियोंका दाहक तथा नाशक होता है। भाव यह है कि भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके प्रति भिन्न-भिन्न स्वभाववाला पदार्थ भिन्न-भिन्न हों, ऐसा नियम नहीं। अतः जीव तथा ईश्वरके प्रति आवरकता अनावरकता स्वभाववाला पदार्थ भिन्न ही है, ऐसा सिद्ध नहीं होता। तब इस जीव ईश्वरके ज्ञानके आवरक अनावरक स्वभाववाला पदार्थ अविद्या या माया भी भिन्न हों ऐसा सिद्ध नहीं होता। अतएव इनके भेदपर आधारित भाष्यविरोध भी कथमपि सिद्ध नहीं होता। मायाके उभयविध स्वभावकी पोषक यत्र-तत्र ग्रामोंमें एक मायावीकी घटना इस प्रकार प्रसिद्ध है। किसी ग्राममें आकर एक मायावीने घोषणा की कि मेरेमें ऐसा सामर्थ्य है कि यदि समस्त ग्रामवासी मेरे कटिभागमें रस्सा बाँधकर खींचे तो मैं खिच नहीं सकता। इस घोषणाको सुन बड़े कौतुकसे लम्बा रस्सा लेकर ग्रामवासी एक पीपलके वृक्षके तले एकत्रित हो गये। मायावीकी कटिमें सुबद्ध रस्सेको खींचते हैं, किन्तु मायावी टस-से-मस नहीं होता। सब मनुष्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय एक व्यक्ति वनसे घास सिरपर रखकर आरहा था। वह भी जनसमुदायको देख, उधर ही चल दिया। पास पहुँचकर चिल्लाने लगा, अरे देखो इन सर्व-ग्रामवासियोंकी बुद्धि कैसी बिगड़ गयी है कि पीपलके वृक्षमें रस्सा बाँधकर खींच रहे हैं। भला इनसे पीपलका वृक्ष कैसे खिच सकता है। उसकी चिल्लाहटको सुनकर मायावीका जमूरा भागा और उसने उस व्यक्तिके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिरपर धरी घासको उठा फेंका। मायावीका जमूरा समझ गया था कि हमारी मायाके प्रभावकी प्रतिबन्धक कोई घास इसकी घासकी पोटलीमें है। घासके सिरसे अलग होते ही वह व्यक्ति भी देखने लगा कि मायावीके कटि प्रदेशमें ही रस्सा बद्ध है तथा ग्रामवासी उसे खींच रहे हैं। खेल समाप्त हुआ। मायावी भी पारितोषक लेकर चला गया।

घटनाका भाव यह है कि मायावीकी माया उसके ज्ञानकी प्रतिबन्धिका नहीं थी। अतः मायावीके प्रति उसका अनावरक स्वभाव था। ग्रामवासियोंके यथार्थ-ज्ञानकी प्रतिबन्धिका तथा विपरीत ज्ञानकी सम्पादिका थी अतः ग्रामवासियोंके प्रति उसका आवरक स्वभाव था। जब लौकिक मायावीकी साधारण एक ही मायाका एकके प्रति अनावरकादि तथा अन्यके प्रति आवरकादि स्वभाव हो सकता है, तब महामायावी परमेश्वरकी एक ही मायाके ईश्वर तथा जीवके प्रति परस्पर विरुद्ध स्वभाव होनेमें क्या आश्चर्य या असम्भावना है ?

पञ्चमाक्षेप (विरोध)

५. कठोपनिषद् १.३.११में अव्यक्त पदका अर्थ सर्वजगत् बीज (प्रकृति) किया है, किन्तु सू० १.४.१में उसी अव्यक्त पदका अर्थ शरीर किया है। तथा हि—

अव्यक्तं सर्वस्य जगतो बीजभूतम्। (कठ० १.३.११)

अव्यक्तशब्देन परिशिष्यमाणं प्रकृत्त शरीरं दर्शयति। (सू० १.४.१)

विरोध-परिहार

कठोपनिषद् १.३.११के भाष्यमें अव्यक्तशब्दको जगद्बीजभूत प्रकृतिका वाचक कहा है। सू० १.४.१के भाष्यमें प्रकरणका विचारकर प्रकरण बलात् शरीरका बोधक कहा है। यदि कठोपनिषद्में प्रकरणके विचारपूर्वक अव्यक्त शब्दको प्रकृतिका बोधक कहा होता तो ब्रह्मसूत्रमें विचारपूर्वक प्रकरणबलात् अव्यक्त शब्दको शरीरका बोधक कहनेसे विरोध होता। उसी प्रकार ब्रह्मसूत्र भाष्यमें अव्यक्तशब्दको शरीरका वाचक कहा होता तो कठोपनिषद्में अव्यक्त शब्दको प्रकृतिका वाचक कहनेसे विरोध होता। परन्तु ऐसा कहा नहीं, अतः कोई विरोध नहीं। कठोपनिषद्में अव्यक्त शब्दका वाच्यार्थ मात्र किया है। प्रकरणादिके विरोधपर विचार नहीं किया, क्योंकि उसका विचार ब्रह्मसूत्रमें करना था। कठोपनिषद्में १.३.३ से आत्मा, शरीर, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ तथा विषयोंको क्रमसे रथी, रथ, सारथि, लगाम, घोड़े तथा शब्दादि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विषयोंको मार्ग कहकर, मध्यमें, विकवेहीन बुद्धिरूप सारथि असंयत मन-रूप लगाम तथा अवशीकृत इन्द्रिय-रूप घोड़ेवाला पुरुष, संसारको ही प्राप्त होता रहता है तथा विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथि, संयत मन-रूप लगाम तथा वशीकृत इन्द्रिय घोड़ेवाला पुरुष, उस पदको प्राप्त होता है, जिससे फिर जन्म नहीं लेता। वह संसारके पार विष्णुके परम पदको प्राप्त हो जाता है। यह सभी कहा, अन्तमें वह विष्णुका परम पद इन इन्द्रियादिकोंसे परसाक्षी आत्मासे अभिन्न परमात्मा है, ऐसा बतानेके लिए यह कहा कि—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥
महतो परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥

इन श्रुतियोंमें इन्द्रियोंसे परे विषय, विषयोंसे परे मन, मनसे परे बुद्धि, बुद्धिसे परे महान् आत्मा (समष्टि बुद्धि), महानात्मासे पर अव्यक्त अव्यक्तसे परे पुरुषको कहा। यहाँ यह आकांक्षा हुई कि क्या अव्यक्त पदका वाच्य सांख्याभिमत प्रधान है या कोई अन्य। यदि सांख्याभिमत प्रधानको अव्यक्त पदका अर्थ माना जायगा, तो अप्रकृतका प्रसङ्ग होगा। क्योंकि परबोधक श्रुतिमें जिन इन्द्रियादिकोंसे परे, पुरुषको बोधन किया है, उनमें-से अव्यक्तको त्यागकर अन्य सभी रथ रूपक प्रकरणमें प्राप्त हैं। सांख्याभिमत प्रधान इस प्रकरणमें प्राप्त नहीं है। अतः अव्यक्त शब्दको प्रधानका वाचक माननेपर अप्रकृतका प्रसङ्ग होगा। यदि अव्यक्त शब्दका अर्थ अन्य है तो वह क्या है? इसपर भाष्य कहता है कि वह शरीर है। क्योंकि रथ रूपकमें आये हुए शरीरसे अन्य पदार्थोंका तो स्वशब्दसे ही परश्रुतिमें स्पष्ट कथन है ही। एक शरीर रूप अर्थ, रूपकमें-से शेष रहा तथा पर श्रुतिमें अव्यक्त पद शेष रहा हैं। अतः यहाँ अव्यक्त शब्दका अर्थ शरीर है। अतः शरीरसे अतिरिक्त अर्थ करनेपर प्रकृत (प्रकरणमें प्राप्त)का परित्याग तथा अप्रकृत प्रसङ्ग रूप दोष आयेगा। अतः यहाँ बीजशक्तिका वाचक भी अव्यक्तपद शरीरका बोधक है।

प्रकरण तथा परिशेषसे अव्यक्तपद यद्यपि शरीरका बोधक है तथापि यह शंका होना स्वाभाविक है कि व्यक्त स्थूल शरीर अव्यक्त पदका बोध्य कैसे हो सकता है? इसके उत्तरमें सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् इस सूत्र तथा भाष्यने कहा कि यद्यपि स्थूल शरीर अव्यक्त पदका वाच्य नहीं हो सकता तथापि कारणावस्थापन्न शरीर, अव्यक्त शब्दसे यहाँ विवक्षित है। यदि कहा जाय कि यहाँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अव्यक्त शब्दसे कारण (बीजशक्ति) रूपसे स्थित शरीर भले ही विवक्षित हो, किन्तु स्थूल शरीरके विषयमें क्या आया अर्थात् स्थूल शरीर अव्यक्त शब्दसे बोध्य कैसे हुआ ? इसका उत्तर यही है कि कारणवाचक पदसे कार्यका बोधन करना भी वैदिक वाक्योंकी सरणि है, जैसे कि—गोभिःश्रीणीत मत्सरम् इस वाक्यमें कारण भूत गौका वाचक भी गो शब्द, कार्यभूत दुग्धके लिए प्रयोग किया गया है। उसी प्रकार यहाँ भी बीजशक्तिका बोधक अव्यक्त पद, कार्यभूत स्थूल शरीरके लिए प्रयोग किया गया है। भाव यह है कि कारण वाचक अव्यक्त पद, कारणसे अभिन्न कार्यका लक्षणासे बोधक है। सारांश यह है कि कठ श्रुतिके अव्यक्त पदका वाच्य उपनिषद् भाष्यमें जगत्की बीजशक्तिको बताया। सूत्रमें प्रकृत तथा परिशेषका विचारकर लक्षणासे शरीरका बोधक कहा, अतएव उपनिषद् तथा सूत्रभाष्यमें कोई विरोध नहीं, विरोध तो तब होता जब दोनों भाष्योंमें बीजशक्ति तथा शरीर दोनोंको वाच्य कहा जाता, सो कहा नहीं। उपनिषद् भाष्यमें भी प्रकरण तथा परिशेषका विचारकर अव्यक्त पदको शरीरका बोधक सिद्ध इसलिए नहीं किया कि सूत्रोंमें ही इस प्रकारका विचार होनेसे सूत्रभाष्यमें विचार करना आवश्यक होनेसे पिष्टपेषण ही होता। उपर्युक्त दोनों भाष्योंकी एक वाक्यतानुसार अव्यक्त पद जगद्बीज शक्तिका बोधक होता हुआ भी लक्षणासे शरीरका बोधक है। अतः भाष्योंमें कोई विरोध नहीं।

आत्माभिराम

तू तो आत्माभिराम, आप्तकाम, पुण्यधाम,
फिर अतृप्त क्यों, सकाम भटक रहा थल थल रे।
पीड़ित क्यों, क्षुद्र मृगमरीचिकाभिभूत चित्त,
अस्थिर क्यों, लक्ष्यहीन, दीन मनश्चंचल रे॥
छिटक पड़ा कूल, किनारों से मँझधार बीच,
भूल मूल, तूल गया, सेवन को दलदल रे।
निरवधि उच्छलित, रस-तरंगित आनन्दसिन्धु,
हो असीम जिसमें, वहो प्यासा क्यों उरतल रे॥

क० गोकुलानन्द तैलंग
'निकुंज'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आत्मोल्लासः

टीकाकार : श्री 'विष्णु'

आत्माका तुरीय स्वरूप

: ९ :

अशेषकरणाधिपैर्गतविशेषमाराधितो
दशासु तिसृषु स्थितो निखिल भोगवान्निर्मलः।
तुरीय इति संज्ञया व्यवहृतस्त्रयीमस्तके-
ष्वहं हरिरबाधितो जयति कल्पनावर्जितः॥

'अशेष अन्तरङ्ग-वहिरङ्ग करणोंके स्वामी निर्विशेष रूपसे आराधना कर रहे हैं। तीनों अवस्थाओंमें स्थिति है। निखिल भोगवान् होनेपर भी निर्मलता एक रस है। वेदके शिरोभाग उपनिषद्में तुरीय नामसे व्यवहार हो रहा है। मैं कल्पनावर्जित अवाधित हरि हूँ। जय हो, जय हो! ॥९॥

आत्मतरङ्गिणी टीका

प्रत्येक मनुष्य अपने विवेकके क्षणोंमें, चाहे वह कितने भी अल्प क्यों न हों, यह स्पष्ट अनुभव करता है कि 'मैं शरीरवान् हूँ' और इसलिए 'मैं शरीरसे पृथक् हूँ।' अन्य व्यस्त क्षणोंमें उसे शरीरसे पृथक् अपनी अनुभूति नहीं होती और अज्ञान रहते हुए सभी क्षणोंमें उसे अपने कर्तृत्व-भोक्तृत्व, परिच्छिन्नत्व, और संसारित्वका वोध वना रहता है तो शरीर उस भोगका साधन है। इस शरीरमें भी दश इन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, यही उन्नीस मुख्य साधन हैं। ये साधन जड़-वर्गके अन्तर्गत हैं तथा अपने समष्टि-अंशियोंके अंश हैं, परन्तु जो भोक्ता है वह चेतनांश है। इस प्रकार चिज्जड़ संघातसे ही इस शरीरमें निखिल कर्तृत्व भोक्तृत्वका अनुभव होता है।

यहाँ 'चेतनांश'के स्वरूपको भी समझना आवश्यक है, क्योंकि चेतन (ज्ञान) का कोई वास्तविक अंश सम्भव नहीं है। विद्वानोंने प्रक्रियांशमें अनेक प्रकारसे इसका वर्णन किया है। 'मन-बुद्धि-चित्त-अहंकाररूपी चतुर्मुखी सत्त्वांशमें शुद्ध चेतनका आभास चेतनांश है;' अथवा इस सत्त्वांशसे अवच्छिन्न शुद्ध चेतन ही चेतनांश है; अथवा शुद्ध चेतनमें स्वाधिष्ठित मायासे स्वप्न-पुरुषोंकी भाँति सांकल्पिक चेतनांशकी प्रतीति ही चेतनांश है। प्रत्येक दशामें चेतनका प्रातीतिक परिच्छिन्न रूप ही चेतनांश है। यही 'जीव' है। अपनी अंशताके कारण ही यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सविशेष है, अन्यथा अंशी चेतनके रूपमें वह निर्विशेष है। जैसे जल चाहे स्वच्छ हो या मैला, जलमें पड़े सूर्य-प्रतिविम्बको वह स्वच्छ या मैला नहीं करता; जैसे घटमें चाहे गंगाजल हो या मदिरा, वह घटावच्छिन्न आकाशको प्रभावित नहीं करता; जैसे स्वप्न-पुरुषके कार्य या विकार्य स्वप्नद्रष्टाको प्रभावित नहीं करते; उसी प्रकार 'विशेष'की विशेषताएँ चेतनांश जीवको प्रभावित नहीं करतीं। अतः काल्पनिक अंशरूपमें भी जीव निर्विशेष' ही है, अंशीरूपमें तो है ही। केवल अविचारसे ही मनुष्य बँधा हुआ है। विचारसे तो वह मुक्त ही है।

वेदान्तके अनुसार जीवका यह निर्विशेष स्वरूप ही 'आत्मा' है और अपरिच्छिन्न होनेके कारण यही ब्रह्म है। व्यवहारतः जो 'जीव' है—कर्ता-भोक्ता-संसारी-अपरिच्छिन्न, वही विचारतः आत्मा है और परमार्थतः वही ब्रह्म है। साक्ष्यकी अपेक्षासे वह साक्षी है और साक्ष्याभाव होनेपर वह साक्षी ही ब्रह्म है। जीव आँख, नाक, कान, मन आदि करणोंसे विषयोंका अनुभव करता है। आत्मा विना करणोंके ही सर्वका प्रकाशक है; ब्रह्म केवल प्रकाश है।

यदि अन्तःकरण-विशिष्ट या अन्तःकरणावच्छिन्न या अन्तःकरण-रूपसे स्फुरित चेतनका नाम 'जीव' है, तो इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि आदिसे पृथक्-पृथक् अवच्छिन्न या विशिष्ट चेतनोंको क्या कहें? वेदान्त इनको 'देवता' कहता है तथा व्यष्टि और समष्टिके भेदसे इनमें भेद स्वीकार नहीं करता। आँखका देवता 'सूर्य' है. जो बाहर सूर्यमण्डलका भी देवता है। इसी प्रकार नाकका देवता अश्विनीकुमार, कानका दिग्देवता, त्वचाका वायु देवता, रसनाका वरुण देवता, वाणीका अग्नि देवता, हाथोंका इन्द्र देवता, पादोंका विष्णु देवता, उपस्थका प्रजापति और पायुका यम, प्राणोंका पवन देवता, मनका चन्द्रमा देवता, बुद्धिका ब्रह्मा देवता, चित्त विष्णुका देवता, अहंकारका रुद्र देवता है। ये देवता अपने-अपने आधारों तथा उपाधियोंके अनुग्राहक भी हैं तथा उनसे परे भी हैं। 'जीव'की भाँति ही ये भी चेतनांश हैं।

ये करण-उपकरण सब अज्ञानी जीवकी वासनाके अनुरूप प्रकृतिमें (या चिन्में) आकार मात्र होते हैं तथा उसके भोग-योगके साधन बनते हैं। इन कारणोंके अधिपति देवता भी इसी जीवके भोगोंको उसके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं तथा स्वामीके भोगमें अपना भोग मान-मानकर तृप्त रहते हैं। इस प्रकार अशेष करण और उनके अधिपति सब इस जीवके प्रति ही समर्पित होते हैं, इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। परन्तु अज्ञानी जीवको इसका ज्ञान नहीं होता। इसीसे देहकी मृत्युके पश्चात् भी अज्ञानी जीवका लिंगशरीर भोग-करणोंसे युक्त रहता है। परन्तु जीवके पारमार्थिक स्वरूप—ब्रह्मत्वका ज्ञान होनेपर ये भोगके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करण और करणाधिपति देवता सब उस ब्रह्मात्माकी आराधना करते प्रतीत होते हैं। ये अपने-अपने विषयोंको ब्रह्मात्माके सम्मुख भेंटस्वरूप प्रस्तुत करते हैं और वह ब्रह्मात्मा इन सबको स्वीकार करता हुआ-सा प्रतीत होनेपर भी अपने असङ्ग-स्वभावके अनुरूप किसीको ग्रहण नहीं करता! इसी अनुभवको महाराजश्री यों अभिव्यक्त करते हैं :

अशेषकरणाधिपैर्गतविशेषमाराधितो

'अशेष (सम्पूर्ण) अन्तरंग-बहिरंग करणोंके स्वामी निर्विशेष रूपसे आराधना कर रहे हैं।'

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—बुद्धिकी ये तीन अवस्थाएँ प्रत्येक जीवकी अनुभवसिद्ध हैं। श्रुतिने आत्माको लक्ष्य करानेके लिए इन्हीं तीन अवस्थाओंका आश्रय लिया है। आत्मा इन तीनों अवस्थाओंमें उपस्थित रहता है। जाग्रत्-अवस्थामें वैश्वानर रूपसे यह आत्मा अपने सात अंगों[1] और उन्नीस मुखों[2]से बाहरके स्थूल भोगोंका भोक्ता है। स्वप्नावस्थामें जाग्रत्की भाँति ही आत्मा तैजस रूपसे अपने अन्दर निक्षिप्त सूक्ष्म भोगोंका भोक्ता है। सुषुप्ति अवस्थामें जहाँ बुद्धिमें कोई कामना नहीं फुरती है, यह आत्मा न कुछ जाग्रत्का देखता है और न कोई स्वप्न देखता है। इस अवस्थामें मानों सारे प्रज्ञानोंका घनीभाव हो गया है। वहाँ यदि कोई अनुभव है तो वह आनन्दका है और आत्मचैतन्य स्वयं ही अर्थात् बिना किसी अन्य अंग या मुखके इस आनन्दका भोक्ता है। इस अवस्थामें आत्माकी संज्ञा 'प्राज्ञ' है। समाधिका अनुभव या तो तैजसका अनुभव है और या प्राज्ञका। इस प्रकार निखिल प्रपञ्चका अनुभवकर्ता तथा भोक्ता यह आत्मा ही है। आत्माका भोक्तृत्व उपलब्धिमूलक है—विषयोंका प्रकाशन करना ही इसका भोक्तापन है। जब अज्ञानके कारण आत्माको अन्तःकरणोपहित 'जीव'के रूपमें ग्रहण किया जाता है तब अप्राप्त विषयोंकी प्राप्ति रूप भोक्तृत्व इसका लक्षण होता है। परन्तु ज्ञानोदयके पश्चात् जब आत्माके ब्रह्मत्वका बोध होता है तब सब विषयोंकी आत्माके रूपमें आत्माका अनुभव हो जाता है। उस अवस्थामें आत्माके भोक्तारूप—वैश्वानर, तैजस और प्राज्ञ, अपने व्यष्टि स्वरूपोंको भंग करके आत्मासे अभिन्न विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वररूप प्राप्त

---

१. द्यौः शिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, आकाश कमर है, जल उपस्थ है, पृथिवी चरण है और आहवनीय अग्नि मुख है। इस प्रकार समष्टि और व्यष्टिके ७-७ विभाग हैं।

२. दस इन्द्रियाँ, पाँच प्राण और चार अन्तःकरण।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर लेते हैं। एक ओर आत्माके ये तीनों भोक्ता रूप जहाँ व्यष्टि शरीरमें अलग-अलग अवस्थाओंमें अनुभूत होते हैं, वहाँ समष्टिमें ये प्रतिपल विद्यमान रहते हैं क्योंकि किसी न किसी प्राणीकी जाग्रदादि अवस्थाएँ सर्वदा विद्यमान रहती है। असलमें, वस्तुतः जो आत्मा है उसमें बाहर-भीतरका भेद (देश-भेद) नहीं हैं, क्योंकि आत्मा देश-कल्पनाका अधिष्ठान है। उसमें अवस्था-भेद (काल-भेद) नहीं है, क्योंकि आत्मा काल-कल्पनाका भी अधिष्ठान है। आत्मामें द्रव्य-भेद (वस्तु-भेद) भी नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण अनुभाव्य वस्तुओंका उपादान चित्त ही है। द्रष्टा-दृश्य, भोक्ता-भोग, कर्ता-कर्मके द्वैतसे विनिर्मुक्त, देश-काल-द्रव्यके भेदोंसे विनिर्मुक्त, नाम रूपकी कलाओंसे शून्य और सन्मात्र, चिन्मात्र, आनन्द-मात्रके रूपमें स्थित, अनुभूत एवं स्फुरित ये आत्मदेव प्रपञ्चके उपशमके रूपमें अद्वितीय सच्चिदानन्दके रूपमें, शान्त और शिव रूपमें सर्वत्र सर्वदा ज्यों-के-त्यों स्थित रहते हैं। यही आत्मा है, जो प्राणीमात्रका अहमर्थ है। यही विश्व, तैजस, प्राज्ञके रूपमें भोक्ता है और विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वरके रूपमें महाभोक्ता है। परन्तु अपने अखण्ड, असंग और अद्वितीय स्वरूपमें नितान्त निर्मल है, अच्युत है। (देखिये माण्डूक्योपनिषद् मन्त्र ३.७)[1]। इस अनुभवको महाराजश्री यों व्यक्त करते हैं—

दशासु तिसृषु स्थितो निखिल भोगवान् निर्मलः।

'तीनों अवस्थाओंमें स्थित है। निखिल भोगवान् होनेपर भी निर्मल एक-रस है।'

क्या कोई ऐसा देश, ऐसा काल, ऐसा द्रव्य है जो अपने अधिष्ठान तथा प्रकाशकके विना सिद्ध हो जाय? सबका प्रकाशक आत्मा! ओह! जाग्रत्के पदार्थोंको यह आत्मा विश्वरूपसे प्रकाशित करता है और विराट् रूपसे धारण करता है; स्वप्नके पदार्थोंको तैजस रूपसे प्रकाश करता है और हिरण्यगर्भ रूपसे

---

१. जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुक् वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥३॥ स्वप्नस्थानोऽन्तः प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीय पादः ॥४॥ यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयेत न कंचन स्वप्न पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान् एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्द भुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः ॥५॥ एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्यामी एष योनिः सर्वस्य प्रभावाप्ययौ हि भूतानाम् ॥६॥ नान्तःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टम् अव्यवहार्यम् अग्राह्यम् अलक्षणम् अचिन्त्यम् अव्यपदेश्यम् एकात्मप्रत्ययसारम् प्रपञ्चोपशमम् शान्तम् शिवम् अद्वैतम् चतुर्थम् मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥७॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धारण करता है; सुषुप्तिके भावबीज और आनन्दकी वही आत्मा प्राज्ञरूपसे प्रकाशता है और ईश्वर रूपसे धारण करता है। विश्व, विराट्, तैजस, हिरण्यगर्भ और प्राज्ञ—ईश्वरका भेद वस्तुगत नहीं है, केवल व्यष्टि और समष्टिके भेद पर आधारित हैं और व्यष्टि, समष्टिका भेद अज्ञानसिद्ध है—व्यष्टि देहके साथ तादात्म्य भाव है और समष्टि व्यष्टिकी कल्पना। क्योंकि समष्टि कभी व्यष्टिके अनुभवका विषय नहीं हो सकती। विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वरका प्रातीतिक भेद भी उनके परमार्थ स्वरूप अद्वितीय आत्मतत्त्वमें मिथ्या है—

यह बात स्वयं श्रुति नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञाघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञंके द्वारा स्पष्ट करती है। चतुर्थं मन्यन्ते कहकर श्रुति विराट्, हिरण्यगर्भादिसे विलक्षण आत्मतत्त्वका उपदेश करती है। परन्तु तीनसे नितान्त पृथक् चतुर्थ वस्तुका प्रदिपादन उसको इष्ट नहीं है, अन्यथा अनवस्थाकी स्थिति हो जायेगी। चतुर्थम् के साथ अद्वैतम् पदसे यही सिद्धान्त निश्चित होता है कि आत्मामें दो, तीन, चारकी गिनती ही अमंगल एवं अयथार्थ है। बोधवान् महापुरुष अपने 'अहंको यही तुरीय पदार्थ (चतुर्थ आत्मतत्त्व) समझते हैं, जिसमें सम्पूर्ण दृश्यादृश्य प्रपञ्चके कार्य-कारण, स्थिति, उत्पत्ति, संहारका समन्वय होता है।

वेदोक्त समस्त कर्मकाण्ड 'विराट्' पुरुषकी पूजाके लिए है, उपासना-काण्ड 'हिरण्यगर्भ' पुरुषकी प्रसन्नताके लिए है और योग-समाधि एवं रहस्यवाद ईश्वरीय स्तरोंके उद्घाटनके लिए है। परन्तु वेदोंके मूर्धन्य भाग उपनिषद् इन विराट्-हिरण्यगर्भ-ईश्वरके पारमार्थिक स्वरूप ब्रह्मकी तुरीय आत्मतत्त्वके रूपमें अनुभूतिके लिए हैं। इस ब्रह्मात्मैक्य-बोधसे परे अन्य कुछ नहीं है। यही सब अनुभवोंकी परमगति है। सा काष्ठा सा परागतिः। महाराजश्री इसी बातको यों व्यक्त करते हैं कि—

तुरीय इति संज्ञया व्यवहृतः त्रयी मस्तकेषु।

'त्रयी=वेदोंके मस्तकेषु=शिरोभाग उपनिषदोंमें तुरीय इति संज्ञया व्यवहृतः='तुरीय' इस नामसे (मेरा ही) व्यवहार हो रहा है।'

इस आत्मतत्त्वको स्वयं श्रुति ही शिवम् कह रही है। श्रेयस्की अन्तिम अवधिको निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष कहते हैं और मोक्ष 'आत्मा'का ही दूसरा नाम है। वस्तुतः अविद्या-निवृत्तिरूप उपाधिसे उपलक्षित आत्माका नाम ही मोक्ष है। इसलिए वस्तुतः आत्मा ही शिव है। कैलाशेश्वर भगवान् शिव इसी शिवस्वरूप आत्माकी उपासनाके लिए निर्धारित अधिदैव रूप हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा और विष्णु भी आत्माके ही उपास्य रूप हैं। उपासना क्रममें सत्त्वगुणोपाधिक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चैतन्यका नाम विष्णु है, रजोगुणोपाधिक चैतन्यका नाम ब्रह्मा है और तमोगुणोपाधिक चैतन्यका नाम शिव है। परन्तु जिसने अपनी आत्माके ब्रह्म स्वरूपका अनुभव प्राप्त कर लिया, उसके लिए अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैवके सब भेद बाधित हो गये! ब्रह्मा, विष्णु, शंकरकी उपाधियाँ भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु उनसे उपहित चैतन्यमें भेद नहीं है। चैतन्य भेदका प्रकाशक होनेसे अभेद रूप है।

जो ब्रह्मा है, वह शंकर नहीं और जो शंकर है वह विष्णु नहीं। परन्तु जो आत्म-चैतन्य है वह ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तीनों है और उसके शुद्ध स्वरूपमें ये तीनों ही नहीं हैं। वह 'तुरीय' है। इस प्रकार जब कि ब्रह्मादिका परस्पर ही बाध हो जाता है, आत्माका कभी बाध शक्य नहीं है, क्योंकि बाधकर्ता स्वयं अपना बाध नहीं कर सकता। इस प्रकार आत्मा ही अबाधित हरि है। महाराजश्री कहते हैं कि—

अहं हरिः अबाधितो जयति कल्पनावर्जितः।

'मैं कल्पनावर्जित अबाधित हरि हूँ! जय हो, जय हो!'

यहाँ 'अहं' पद लक्ष्यार्थ ब्रह्मात्माको अबाधित हरि कहा गया है। यहाँ 'हरि' पदका अर्थ समस्त देवी-देवतासे है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र आदि सभी देव मुझ आत्म-चैतन्य रूपी महार्णवकी तरङ्गें मात्र हैं। 'विचार-सागर'के मंगलाचरणका प्रसिद्ध दोहा है—

अब्धि अपार स्वरूप मन लहरी विष्णु महेश।
विधि रवि चन्दा वरुण यम शक्ति धनेश गनेश॥

—विचारसागर १.२

यहाँ 'हरि'के दो विशेषण महाराजश्रीने दिये हैं: अबाधित तथा कल्पनावर्जित। अबाधित अर्थात् बाधावधिरूप बाधकर्ताका पारमार्थिक स्वरूप। कल्पनावर्जित अर्थात् कल्पनाका अविषय अथवा कल्पनाके अत्यन्ताभावसे उपलक्षित आत्मा। जाग्रत्में कल्पना बाह्याकार परिणामको प्राप्त होती है। स्वप्नमें कल्पना आन्तर परिणामको प्राप्त होती है। सुषुप्तिमें कल्पना अपने आश्रयमें लीन हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि कल्पनाका विषय है और स्वयं कल्पना उसीमें भासती है, जिसमें वह नहीं है क्योंकि अपने विषय सहित कल्पना अपने आश्रय आत्मामें बाधित हो जाती है। अतः आत्मा ही प्रपंचोपशमं शिवम् अद्वैतम् है। वही वस्तुतः हरि है। ऐसे 'हरिकी जय हो, जय हो' इस स्तुतिके अतिरिक्त और क्या कहा जाय। अथवा 'जयति' यह साक्षात्कारके समयके भावातिरेकका परिचायक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनिषद् और ज्ञानवाद

श्री रामनारायण त्रिपाठी

(प्राच्य संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ)

आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दृष्टिसे यद्यपि मानव जीवनके अनेक उद्देश्य होते हैं जो नित्य, अनित्य, क्षणिक, स्थायी, चिरस्थायी, अल्प, अल्पतर, महान्, महत्तर हैं। ये सभी उद्देश्य मनुष्योंको समयानुसार अपनी-अपनी इच्छाके अनुरूप अभीष्ट हैं, किन्तु सर्वाङ्गीण दृष्टिसे देखा जाय तो यह निर्विवाद सिद्ध है कि मानव मात्रका अन्तिम उद्देश्य आध्यात्मिक पक्ष ही है। इसमें ही सब उद्देश्योंका पर्यवसान होता है और यही वास्तविक उद्देश्य है। यहाँ आध्यात्मिक उद्देश्यका तात्पर्य परम पुरुषार्थ मोक्षसे लिया गया है। यद्यपि आत्मा सम्बन्धी सम्पूर्ण बातें आध्यात्मिक शब्दसे गृहीत होती हैं, तब भी तारतम्य रूपसे सर्वातिशय आध्यात्मिक रहस्य आत्म-साक्षात्कार ही है जो मोक्ष आदि शब्दोंसे जगत्में व्यवहृत होता है। इस- आत्म साक्षात्कारकी प्राप्तिमें सबसे बड़ी बाधा अविद्याकी है; जो एक दुर्भेद्य आवरण है जिसके कारण आत्मा (ब्रह्म)की सत्ता और प्रकाश दृष्टिगोचर नहीं होता। इस अविद्याका निवारण या निराकरणके लिए मुख्य रूपसे ज्ञान, कर्म और उपासनामें तीन उपाय चिरकालसे चलते आ रहे हैं। जो वेदादि शास्त्रोंमें भली-भाँति प्रतिपादित हैं। इन उपायोंके द्वारा भारतीय जन अपने श्रेयको प्राप्त करते हैं। यद्यपि इनकी परम्परा बहुत प्राचीन है, जो वेदोंसे लेकर पुराणों तक विस्तृत हुई है। किन्तु शास्त्रों, उनके व्याख्याकारों एवं विभिन्न सम्प्रदायोंमें इनका स्वरूप पूर्णतया विकसित हुआ है जिसके अनुसार भिन्न-भिन्न अभीष्ट-मार्गोंका आश्रयण जनता करती है।

अब यहाँ विचारणीय यह है कि आध्यात्मिक रहस्य (आत्मसाक्षात्कार) जो मोक्ष, कैवल्य आदि पदोंसे कहा जाता है, उसकी प्राप्ति किससे होती है? क्या उक्त तीनों साधनोंकी समष्टिसे समष्टिमें इनका परस्पर सम्बन्ध और गौण प्रधान भाव जैसा है? व्यष्टिमें वास्तविक रूपसे कौन साधन है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसके अतिरिक्त उपनिषद्का मोक्ष-साधनोंमें क्या योगदान है ? अर्थात् उपनिषद्का यथार्थ रूपसे क्या तात्पर्य है ? यद्यपि आत्म-साक्षात्कारके लिए ज्ञान, कर्म, उपासना, योग, प्रपत्ति (शरणागति) आदि साधन भारतीय वाङ्मयमें[1] विहित हैं, जिसे अधिकारी व्यक्ति अपने रुचिके अनुसार ग्रहणकर अपने परम उद्देश्यकी प्राप्ति करते हैं किन्तु यदि सूक्ष्म रूपसे देखा जाय तो इन सब उपायोंमें ज्ञान ही विवादरहित सर्वसम्मत तथा सर्वोपरि उपाय है ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। अन्य उपाय अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्तिके साधन हैं। इस प्राप्तव्य मोक्षदायक ज्ञानकी प्राप्तिका साधन एकमात्र उपनिषद्है। उपनिषद्-ज्ञानके द्वारा ही ब्रह्म (आत्मा) जाना जाता है क्योंकि उपनिषद् ही ब्रह्मविद्या कही जाती है— उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मी वाव (के० ४.४.७) इत्यादि। केनोपनिषद्से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसके अतिरिक्त उपनिषद् शब्द अपनी निरुक्तिके द्वारा भी ब्रह्मविद्याका वाचक है। उप, नि, पूर्वक सद् धातुसे निष्पन्न इस शब्दका अर्थ है कि जो साधन-चतुष्टयसे सम्पन्न मुमुक्षु व्यक्तियोंको परब्रह्मकी प्राप्ति करावे या उनके सांसारिक बन्धनोंको शिथिल करे अथवा सब अनर्थोंके मूल अविद्याका विनाश करे अथवा जिसमें परमश्रेय निहित हो उसे उपनिषद् कहते हैं। इस प्रकारसे यह सिद्ध हो जाता है कि उपनिषद् ब्रह्मविद्या ही है। इस ब्रह्मविद्याका प्रतिपादक जो ग्रन्थ है वे भी आयुर्वै घृतम्की तरह प्रतिपाद्य-प्रतिपादक सम्बन्धसे उपनिषद् कहे जाते हैं। ऐसी अवस्थामें निश्चित है कि ब्रह्म (आत्मा)के साक्षात्कार करानेवाले ज्ञानको देनेमें ब्रह्मविद्या-रूप उपनिषद् ही समर्थ हैं; क्योंकि इसका ब्रह्मसे साक्षात् सम्बन्ध है। तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि (बृ० ३.९.२६)।

परम पुरुषार्थ मोक्ष ज्ञानसे[2] ही प्राप्त होता है तथा मोक्षका साधन

---

१. स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
भक्त्या परमया वापि प्रपत्त्या वा महामुने।
प्राप्योऽहं नान्यथा प्राप्यो मम कैङ्कर्यलिप्सुभिः॥
बाह्येन चान्तरेणापि योगाख्येन महामुने।
न्यासेन वा सुखी सोऽत्र परत्र च न संशयः॥

२. कठोपनिषद् १,३ अध्याय। मुण्डकोपनिषद् २,३ अध्याय।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान उपनिषद्से ही उपलब्ध होता है। श्रुति स्वयं इसे प्रकट करती है वेदान्त-विज्ञानसुनिश्चितार्थाः (१ मु० ३.२.६)। इसकी यहाँ संक्षेपमें चर्चा की गयी है, आगे इसपर कुछ और विचार होगा। अब यहाँ अन्य उपायोंका ऐसी अवस्थामें क्या प्रयोजन है, इस पर कुछ विमर्श करना प्रासंगिक है। अन्य उपायोंके स्वीकार करनेवाले साम्प्रदायिक निकायोंकी दृष्टिमें यद्यपि वही उपाय श्रेष्ठ एवं ग्राह्य हैं इसमें कोई सन्देह नहीं; किन्तु ज्ञानवादियोंकी दृष्टिमें वे सब अवान्तर उपाय ही हैं। प्रधानता एवं साक्षात् साधनता उनमें नहीं है। भले ही वे अन्तःकरण-शोधन, मलापकरण आदिमें सशक्त हों, क्योंकि उनके विषयमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं। नित्यनैमित्तिकैरेव कुर्वाणो दुरितक्षयम् इत्यादि। इसका अभिप्राय यह है कि कर्म, उपासना, योग आदि सकाम और निष्काम दोनों रूपोंमें किये जाते हैं। जहाँ कामनाएँ हैं वहाँ कामनापूर्ति ही इसके उद्देश्य हैं और वहाँ कर्मजन्य पुण्यके प्रभाव, आराध्य देवकी कृपा, योगसिद्धियोंकी शक्तिसे स्वर्गादि उत्तम लोककी प्राप्ति, लौकिक राज्यादि सुख सम्पदाएँ, एषणाओंका उपभोग, प्रायश्चित्त, (उद्दिष्ट पापोंका शोधन) मान-मर्यादा, अपूर्व शक्ति आदिकी उपलब्धि होती है। बृहदारण्यक १.४.१७, १.५.१६ श्रुतियोंमें लोकत्रयका ही कारण इन्हें कहा गया है। निष्काम रूपसे किये गये ये उपाय सञ्चित, क्रियमाण कर्मोंका विनाशकर अन्तःकरणको अत्यन्त निर्मल कर देते हैं, जो अन्तःकरण मोक्षप्रद ज्ञानके लिए उपयोगी सिद्ध होता है। यदि ऐसी अवस्थामें भी अन्य कर्मवादी आदि मोक्षके निमित्त कर्म आदिको ही अक्षुण्ण कारणता मानते हैं तब वहाँ यही स्वीकार करना उचित होगा कि वे कर्म, उपासना, प्रपत्ति और योग उस समय अर्थात् मोक्षप्रद कालमें केवल संज्ञा मात्रसे भिन्न रहते हुए स्वरूपसे ज्ञानमय ही हो जाते हैं। यहाँ उनका पर्यवसान ज्ञानमें ही हो जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकारसे होगा।

प्रपत्ति—जिन साधकोंके मतसे मोक्षका साधन केवल प्रपत्ति है उनके विचारसे भी ज्ञान ही अन्तिम मार्ग सिद्ध होता है। वह इस प्रकारसे है कि प्रपत्ति आत्मसमर्पणकी सच्ची भावना है जो ईश्वरके प्रति अनन्य निष्ठाका सूचक है। यही निक्षेप, न्यास, न्यसन, संन्यास, त्याग, शरणागति, प्रपदन और आत्मनिवेदन आदि शब्दोसे भी सर्वत्र कही गयी है। इस प्रपत्तिका वाचक न्यास उपनिषद्-प्रतिपादित एक ब्रह्मविद्या है। उपनिषदोंमें जैसे ब्रह्म, जीव, प्रकृति तथा उनके परस्पर सम्बन्ध आदिका विचार है, उसी प्रकार ब्रह्मानुभवकी साधनभूत बत्तीस ब्रह्मविद्याओंका भी वर्णन है जिसका अभ्यास मुमुक्षुओंका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्तव्य कहा गया है। इन्हीं ब्रह्मविद्याओंमें न्यास एक ब्रह्मविद्या है। इस तरह जब प्रपत्ति ब्रह्मविद्या सिद्ध हो गयी तब संज्ञाके द्वारा ब्रह्मविद्या (ज्ञान)से भिन्न या व्यापक न हुई। अपितु उसके ही कुक्षिमें प्रविष्ट मानी जायेगी। स्वरूपसे भी यह प्रपत्ति ज्ञानसे पृथक् अपनी सत्ता नहीं रखती, कारण यह है कि भगवान्के प्रति गाढानुराग रखते हुए आत्मसमर्पण करना अर्थात् अपनेको अपनी रक्षाके भारको और रक्षणके फलको प्रभुके चरणोंमें अर्पित कर देना प्रपत्ति है। इसमें मैं और ममत्व न रहकर सबकुछ भगवान्का ही हो जाता है। अब यहाँ देखे कि यह भावना ज्ञान नहीं है तो क्या है? क्या यह अद्वैत ज्ञानसे अतिरिक्त कोई अपूर्व बात हो सकती है। इसके अतिरिक्त प्रपत्तिके—१. आनुकूल्य-संकल्प २. प्रातिकूल्य-वर्जन ३. महाविश्वास ४. गोप्तृत्व-वरण ५. कार्पण्य ६. आत्म-निक्षेप। इन छः अङ्गों तथा प्रपत्तिकी १. मृदु २. मध्य ३. अधिमात्र इन तीनों[1] अवस्थाओंपर दृष्टि डाली जाय तो यह निश्चित है कि प्रपत्तिका अन्तिम रूप ज्ञान ही सिद्ध होगा जो अद्वैत ब्रह्मज्ञानसे लेशमात्र भी भिन्न नहीं है। स्वामी मधुसूदन सरस्वतीने सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। गी० १८.६६ की व्याख्यामें कहा है कि प्रपत्तिकी प्रथम अवस्थामें भक्तकी प्रबल भावना यह बनी रहती है कि मैं उस भगवान्का ही हूँ तस्यैवाहम्। इसमें ईश्वरकी महत्ता तथा असीमता प्रकट करता हुआ भक्त अपनेको उसका एक अभिन्न स्वरूप मानता है। दूसरी अवस्थामें ममैवाऽसौ यह भगवान् मेरे ही हैं यह भावना होती है। इन दोनों अवस्थाओंमें भेदका आभास अर्थात् भेद सहित अभेद तथा ईश्वर और साधकमें आत्मा-आत्मीय, सेव्य-सेवक सम्बन्ध रहते हैं किन्तु तीसरी अवस्थामें भक्त अपने और भगवान्में ऐक्य स्थापित कर लेता है और अपनेको स एवाहम् परमात्मा मान लेता है। इसमें किसी प्रकारकी भेद-भावना नहीं रहती। साधक, ईश्वर, सकल चराचर जगत्, सब कुछ ईश्वरमय हो जाता है। सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः। जबकि प्रपत्तिकी अन्तिम अवस्था इस प्रकारकी है तब फिर अद्वैत ब्रह्मज्ञानमें इसका पर्यवसान न माना जाय तो और क्या हो सकता है? वास्तविकता तो यह है कि यह ज्ञानस्वरूप है और

---

१. तस्यैवाहं ममैवासो स एवाहमिति त्रिधा।
भगवच्छरणत्वं स्यात् साधनाभ्यासपाकतः॥ गी० १८.६६ मधु० टी०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रपत्ति तथा ज्ञानमें केवल नाम भेदके अतिरिक्त कुछ भी भेद नहीं है ।

उपासना—जो लोग उपासनाको परम पुरुषार्थका एकमात्र साधन मानते हैं उनकी दृष्टिसे भी यदि देखा जाय तब भी उसका पर्यवसान ज्ञानमें मान लेनेपर कोई आपत्ति और विप्रतिपत्ति न होगी । कारण यह है कि उपासना जो 'भक्ति' पदसे व्यवहृत होती है उसके श्रवण, कीर्तन, इत्यादि अनेक भेद हैं जिसमें मुख्य भेद दो प्रकारके हैं ? १. उपायभक्ति (साधन भक्ति) २. परा भक्ति (साध्या भक्ति) । उपाय भक्तिमें सेवक-सेव्यकी भावना रहती है । अतः वहाँ द्वैतका भान होना अनिवार्य है किन्तु इस उपायभक्तिसे साध्य जो परा भक्ति है जिसके द्वारा भक्त अपने आराध्य देवसे तादात्म्य करता है उसमें द्वैताभास नहीं रहता अपितु अद्वैत भान ही रहता है । इस प्रकार साध्या भक्ति ज्ञानस्वरूप ही है या इसका पर्यवसान ज्ञानमें ही है यह सिद्ध हो जाता है ।

योग—इसी प्रकार योगको कैवल्य-का केवल साधन माननेवालोंके अनुसार विचार करनेपर भी योग द्वारा उस ज्ञानकी प्राप्ति होती है जो ब्रह्मरूप है अथवा योगका अन्तिम रूप ज्ञानमय ही है । योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये विज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः २.२८ यो० सू० । योगके यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये आठ अङ्ग हैं । जिसमें प्रथम चार बाह्य साधन हैं तथा अन्तिम चार आन्तरिक साधन हैं और ये सब क्रमशः उत्तरोत्तर अङ्गोंके साधक एवं पोषक हैं । इनमें पूर्व-पूर्व अङ्गोंके अनुष्ठान करनेपर ही साधक उत्तरोत्तर अङ्गोंके अधिकारी होते हैं । इनमें सर्वश्रेष्ठ अङ्ग समाधि है जो मन्त्रयोगी, हठयोगी, लययोगी, राज-योगी सबको अभीष्ट है । यह दो प्रकारकी है १. सविकल्पक तथा २. निर्विकल्पक । सविकल्पक समाधि-अवस्थामें साधक निरुद्ध अन्तःकरण द्वारा भगवान्‌का साक्षात्कार करता है किन्तु यहाँ द्वैतभेद भी रहता है लेकिन निर्विकल्पक समाधिमें ध्याता, ध्यान और ध्येयके एक हो जानेपर अपनी सत्ता मिटकर केवल एकरूपताकी प्राप्ति होती है । इसमें परमेश्वरके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तुकी सत्ता नहीं रहती इस दशामें विचारणीय यह है कि क्या यह समाधि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयकी एक अवस्थासे अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु है ? या ब्रह्म सद्भावसे भिन्न दशा है ?

कर्म—कर्मवादी कर्मके द्वारा ही मोक्षलाभ स्वीकार करते हैं । यदि उनकी ही दृष्टिसे देखा जाय तो अन्ततो-गत्वा कर्मके परिप्रेक्ष्यमें ज्ञान ही दृष्टि गोचर होगा । कारण यह है कि यावत् कर्म है । उन्हें दो रूपोंमें विभक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया जा सकता है १. सकाम कर्म २. निष्काम कर्म। सकाम कर्मकी उपयोगिता केवल ऐहलौकिक तथा स्वर्गीय मात्र है।[1] परमपुरुषार्थमें इसका योगदान नहीं होता। अतः [2]मुण्डकोपनिषद्में ज्ञान रहित कर्मोंकी तथा अविद्याग्रस्त कर्मठोंकी दुर्दशा कही गयी है। निष्कामकर्म ही एक ऐसा कर्म है जिसे मोक्ष साधन मानते हैं। उस कर्मका होना बिना ज्ञानके सम्भव नहीं है और न वह कर्म ब्रह्मसद्भावकी भावनाके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है। भगवान् कृष्णने ऐसे ही कर्मोंकी प्रशंसा की है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येद-
कर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु
स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥
गी० ४.१८

इससे यह सिद्ध होता है कि कर्मका पर्यवसान ज्ञानमें ही होता है।

यदि इसके अतिरिक्त इन कर्म आदि चार उपायोंको ज्ञानस्वरूप न मानकर ज्ञानसे भिन्न रूप माना जाय या उनका विनियोग ज्ञानप्राप्ति न कर उन्हें ज्ञानके बिना ही मोक्षप्रद माना जाय तो बड़ी कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ होंगी, जिनका निराकरण असम्भव है। कारण यह है कि यदि ये उपाय ज्ञानसे भिन्न हैं तो निश्चित ही अप्रकाश रूप होंगे क्योंकि ज्ञान ही प्रकाश स्वरूप है अन्य नहीं। ऐसी स्थितिमें फिर उन अप्रकाश स्वरूप सब उपायोंसे किस तरह ज्ञान लभ्य मुक्ति उपलब्ध होगी। जब तक अविद्याका विनाश नहीं होता है तबतक मुक्ति नहीं हो सकती और अविद्याका विनाश विद्या (ज्ञान)के अतिरिक्त दूसरेसे नहीं सम्भव है, क्योंकि प्रकाशसे ही अन्धकार दूर होता है न कि अन्धकारसे। अतः प्रकाश रूप ज्ञान ही उसके लिए इतना सशक्त कारण है जो किसी भी सहकारी कारणकी अपेक्षा नहीं करता और अकेले ही मुक्तिको सम्पन्न करता है। जैसे—शुक्तिगत ज्ञान बिना सहकारी कारणके केवल अपने ही शुक्तिगत अज्ञानको विनष्ट करता है। उसी प्रकार आत्मज्ञान भी स्वयं अकेले ही अज्ञानको विनष्ट करता है। दूसरी बात यह है कि जब उन्हें ज्ञानकोटिमें न माना जायगा तो वे अवश्य कर्मकोटिमें आवेंगे और पुरुषप्रयत्नके अधीन एक क्रियामात्र होंगे तो फिर ऐसी दशामें वे सब अनित्य, सातिशय, सापेक्ष, क्षयी, अप्रकाशरूप होते हुए किस प्रकारसे

---

१. कठोपनिषद् १.२.१०, २.३.१४।

२. मु० १.२.७–१०।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नित्य, निरतिशय, निरपेक्ष, स्वप्रकाश-स्वरूप मोक्षके साधन हो सकते हैं। इन्हें भिन्न माननेपर इनके द्वारा स्वर्गादि लोकोंकी ही सम्भावना है मोक्षकी नहीं हो सकती। इसलिए इनको ज्ञानमें ही अन्तर्भाव या पर्यवसान कर देना उचित है अथवा इन्हें ज्ञानका साधन मान लेना समीचीन है। दुरितक्षय, कर्मशिथिलता, चित्त शुद्धिमें ही इनका विनियोग स्वीकारकर उसके द्वारा ही ज्ञानका साधन होनेमें किसी-को कोई भी आपत्ति न होगी।

परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति केवल ज्ञानसे ही होती है अन्य किसी उपाय-से नहीं हो सकती। इसका घण्टा निनाद श्रुतियाँ बारम्बार करती रहती हैं। जैसे—

ब्रह्मविदाप्नोति परम्। (तै० २.१.१)

ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। (मु० ३.२.९)

तरति शोकमात्मवित्। (छा० ७.१.३)

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः विद्यतेऽयनाय। (श्वे० ३.८)

भिद्यते हृदयग्रन्थिः...तस्मिन् दृष्टे परावरे। (मु० २.२.८)

विद्यया विन्दतेऽमृतम्। (के० २.२.८)

ये तद् विदुरमृतास्ते भवन्त्य-थेतो दुःखमेवापि यन्ति। (बृ० ४.४.१४)

विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्। (बृ० ४.४.१७)

इसलिए ज्ञानी लोग ज्ञानसे भिन्न किसी उपायका अवलम्बन नहीं करते अपितु उसका परित्याग ही करते हैं। क्योंकि जो लोग ज्ञान रहित हैं उन्हें आनन्दविहीन अन्धकारमय लोककी ही प्राप्ति होती है। प्रकाशमय लोक स्वप्न-दुर्लभ हैं। इसलिए ज्ञानभिन्न आविधिक उपा-यान्तरोंको निषेध करनेमें श्रुतियाँ रञ्चमात्र संकोच नहीं करती हैं। वह जननीस्वरूप श्रुति माता निषेध द्वारा उपायान्तरपर आश्रित रहनेवाले व्यक्तियोंको कष्टमय गर्तमें पतन होनेसे रोकनेके लिए स्पष्ट घोषित करती रहती हैं जैसे—

नान्यः विद्यतेऽयनाय। (पू० ३.८)

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः। (मु० ३.२.४)

अन्धः तमः प्रविशन्ति-येऽविद्यामुपासते। (बृ० ४.४.१०)

आनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृत्ताः। तांस्ते प्रेत्याभि-गच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधो जनाः। (बृ० ४.४.११)

अतः एतदर्थं ज्ञान ही एकमात्र सर्वथा उपयोगी सिद्ध होता है और इस मोक्षोपयोगी ज्ञानकी उपलब्धि केवल उपनिषद्से ही प्राप्त होता है। इसलिए मुमुक्षु अधिकारीको चाहिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कि वह आत्मा साक्षात्कारके लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाकर श्रुतियोंका उपदेश प्राप्त करे।

आचार्यवान् पुरुषोवेद।
(छा० ६.१४.२)

क्योंकि आचार्य द्वारा उक्ति, युक्ति और अनुभूतिके बलपर प्राप्त उपदेश विविध प्रकारके शंकाओंका निराकरणकर मार्ग प्रशस्त करता है और तभी वह विद्या आत्म-साक्षात्कार करनेमें सक्षम होती है।

आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापत्। (मु० १.२.१२)

अन्यथा सन्देहग्रस्त होकर स्वयं विशीर्ण हो जायेगी। उपदेश ग्रहणके अनन्तर स्वयं मननकर दृढ़तर अभ्यास द्वारा असम्भावना और विपरीत भावनाकी वासना दूरकर विज्ञेय परमात्माको भलीभाँति जानकर मुक्त हो जाता है।

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः।
(मु० ३.२.६)

यह श्रुति स्वयं मोक्षप्रदके निमित्त उपनिषदोंकी उपयोगिता सिद्ध कर रही है। इस उपनिषद्-प्रतिपादित ज्ञानमें उन्हीं व्यक्तियोंका अधिकार है जिनकी निष्ठा त्याग और संन्यासमें है और तभी उपनिषद् मोक्षका साधन होती है। इसलिए श्रुति[1] एतदर्थं बारम्बार संन्यासकी श्रेष्ठता बताती हुई उसका विधान करती है। कहीं यदि गार्हस्थ्य जीवनमें भी ज्ञानोपलब्धि सुनी जाय तो उससे त्याग विधिका प्रतिवाद नहीं हो सकता, अपितु वह अर्थवाद हो सकता है।

इस प्रकारसे ज्ञान और उपनिषद्की महत्ता सर्वोपरि निश्चित हो जानेपर भी उपनिषदोंमें जो विभिन्न प्रकारकी कर्म उपासना, परक श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं उनसे विरोध हो जानेके कारण उक्त निश्चयमें सन्देह हो जाता है। इसलिएँ इस सन्देहके निराकरणके निमित्त उन विरोधी श्रुतियोंका समन्वय कर लेना ही उचित है, न कि सन्देहके कारण ज्ञानपरक श्रुतियोंकी अप्रामाणिकता या उन सब विरोधी वचनोंकी प्रधानता स्वीकार करना उपयुक्त होगा। इस विचारसे यहाँ कुछ समन्वयकी रूपरेखा प्रस्तुत किया जा रहा है।

जहाँ उपनिषदोंमें ऐसी श्रुतियाँ प्राप्त होती हैं जो ज्ञानके साथ कर्म

---

१. परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् (मु० १.२.१२)। क्रियापथश्चैव पुरस्तात् संन्यासश्च तयोः संन्यास एवात्यरेचयत् (कै० उ० १.२, बृ० ३.५.१, ४.४.१२, जा० उ० ४, कै० १.२) इत्यादि।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आदिका भी विधान करती हैं[1] वहाँ उनका तात्पर्य क्रमसमुच्चयमें ही है अर्थात् साधक क्रमशः इन उपायोंके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धिकर ज्ञानमें प्रविष्ट हो और ज्ञानकी परिपक्वावस्था हो जानेपर इन्हें त्यागकर पूर्णतया ज्ञानरत हो जाय। इस तरह इन उपायों द्वारा ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर ज्ञान-सम्पन्न व्यक्तिको इनकी आवश्यकता नहीं होती। कारण यह है कि जो व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ पदार्थको प्राप्त कर लेता है तब उसे निम्न पदार्थोंकी इच्छा नहीं रहती। ज्ञानके द्वारा आत्म-साक्षात्कार रूप परम पुरुषार्थ प्राप्त हो जानेपर कौन अन्य तुच्छ फलोंकी अभिलाषा करेगा। ज्ञान-सम्पन्न व्यक्तिको आप्तकाम होकर भी आनुषंगिक रूपमें निष्काम कर्म आदि करनेकी भी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि कोई भी विद्वान् कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर समझता है। अतः इन सब उपायोंके पूर्वापर भावमें श्रुतिका तात्पर्य है न कि सम समुच्चय या पक्षान्तर निरूपणमें क्योंकि ऐसा स्वीकार करनेमें ही समुच्चय परक श्रुतियोंसे भिन्न दूसरी श्रुतियों अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते (ई० ११) इत्यादि श्रुतियोंका सामञ्जस्य हो सकता है। इस तरह जहाँ विद्याकी निन्दा की गयी है[2] वहाँ विद्याका तात्पर्य देवताविषयक ज्ञानसे है न कि आत्मसम्बन्धी ज्ञानसे। यदि आग्रहसे या अन्य प्रकरण आदि कारण-वश उसका अर्थ आत्मज्ञानपरक ही माना जाय तव भी उसका तात्पर्य अपरिपक्व ज्ञानसे ही है। ऐसे ही कर्म आदि प्रतिपादक श्रुतियोंके प्रकरणमें अथवा जहाँ अन्य उपायों द्वारा ब्रह्म या ब्रह्मलोककी चर्चा की गयी है[3] वहाँ ब्रह्मका कार्यब्रह्म और ब्रह्मलोकका स्वर्गलोकसे ही तात्पर्य है। उपनिषदोंमें अनेक ऐसी श्रुतियाँ मिलती हैं जो ज्ञानविधिकी तरह अलग-अलग कर्म, उपासना आदिका विधान करती हैं[4]। वहाँ मुख्यतः उसका तात्पर्य अविरक्त

---

१. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग् ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् (मु० ३.१.५) इत्यादि।

२. ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः (ई० ९, वृ० ४.४.१०) इत्यादि।

३. एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः (मु० १.२.६, ११) इत्यादि।

४. तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व (तै० ३.२.५)।
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः (ई० २)।
तमेतं वेदानुवचनेन……यज्ञेन दानेन तपसा (वृ० ४.४.२२) इत्यादि।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यक्तियोंसे है। जो सकाम हो, उनके लिए वह लौकिक पारलौकिक सुखोंको देनेमें समर्थ है। यदि मोक्षपक्षमें ही इसकी उपयोगिता मानी जाय तब इनके तात्पर्य पापोंके विनाशके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि करना और ज्ञान पथको प्रशस्त करना मात्र ही है। अन्यथा इन अनित्य क्रियाओंके द्वारा नित्य मोक्ष-पथकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?

इस प्रकार ज्ञान-विरोधी वचनोंका समन्वयकर सब श्रुतियोंका परम बोद्धव्य विषय केवल ज्ञानको ही समझना उचित और श्रेयस्कर है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर अन्य साधनोंके साथ यदि ज्ञानकी समष्टि माना जाय तो पौर्वापर्य रूपमें सम्भव है, जिसमें ज्ञानका प्राधान्य निर्वाध है अन्यथा व्यष्टिरूपमें केवल ज्ञान ही एतदर्थ सशक्त कारण है।

फूल

[१]

जिन्दगीकी हर डगर अनुकूल आये,
हित-अहितका भेद बिल्कुल भूल जाये।
खिलखिलाहटसे सु-स्वागत हो सभीका,
'फूल' जैसा मन अगर यह फूल पाये॥

[२]

जन्मते ही मृत्युसे वह खेलता है,
मुस्करा करके दुःखोंको झेलता है।
देख उसको, दर्द अपना भूल जाओ,
इसलिए हर 'फूल' खुशियाँ मेलता है॥

—भानुदत्त शास्त्री 'मधुरेश'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अचिन्त्य-चिन्तन

श्री विष्णुकुमार गग्गल

१. 'आइये, अचिन्त्यका चिन्तन करें।' मैंने मित्रको निमन्त्रण दिया।

'ठहरिये! क्या आपको ज्ञात है कि आप क्या कह रहे हैं?' थोड़ा रुककर वे बोले—

'जो अचिन्त्य है उसका चिन्तन नहीं हो सकता और जो चिन्तनका विषय बनता है, वह अचिन्त्य नहीं हो सकता। फिर अचिन्त्यका चिन्तन कैसे?

'जो अचिन्त्य है वह है भी या नहीं, इसका निर्णय भी कैसे हो? क्योंकि अचिन्त्य किसी भी प्रमाणका विषय नहीं हो सकता।

'जो अचिन्त्य है वह यदि है भी, उसके चिन्तनसे लाभ भी क्या हो सकता है? क्योंकि अचिन्त्य वस्तुका किसी भी प्रमेय वस्तुके साथ कोई सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो सकता!

'जो अचिन्त्य है, उसका यदि अस्तित्व है और यदि उसके चिन्तनसे किञ्चित् लाभ भी है, तो भी जीवनकी इतनी भयावह समस्याओंके रहते क्या यह चिन्तनशक्तिका दुरुपयोग नहीं है? और यदि किसी अलौकिक वस्तुका चिन्तन ही करना है, जीवनकी समस्याओंसे पलायन करनेके लिए अथवा काल्पनिक ढंगसे उनके समाधानमें योगदान करनेके लिए, तो फिर अचिन्त्यके चिन्तनकी अपेक्षा किसी कल्पित नामरूपगुणसम्पन्न प्रचलित अथवा नवीन देवी, देवताका चिन्तन क्यों न किया जाय?

'चिन्तन सदैव अनुभूत अथवा अनुभव योग्य नाम - रूप-गुण - क्रिया आदिका होता है। अचिन्त्य वस्तु न तो इस प्रकारसे अनुभूत है और न अनुभव योग्य है। फिर अचिन्त्यका चिन्तन क्या करेंगे?'

२. मैंने कहा, 'मित्र! याद है तुमको वह बचपनकी घटना, जिसमें एक दिन मैं छिप गया था और तुम मुझे कई दिन तक ढूंढते फिरे थे?'

'नहीं', वे बोले; 'बात बहुत पुरानी हो गयी। तुम ही स्मरण कराओ।'

'अच्छा तो सुनो' मैंने कहना प्रारम्भ किया। 'उस दिन मैंने और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आपने शर्त लगायी थी कि मैं छिपूँगा और आप ढूँढेंगे और यदि आपने मुझे ढूँढ लिया तो मैं आपको मिठाई खिलाऊँगा अन्यथा आप मुझको मिठाई खिलायेंगे।'

'हाँ, हाँ, याद आ रहा है।' वे हँसते-हँसते बोले, 'और फिर तुम ऐसे गायब हुए कि कई दिन तक ढूँढते रहनेपर भी तुम नहीं मिले। कहाँ चले गये थे तुम? आखिर मिठाई तो मैंने तुमको खिला दी थी, परन्तु अपने छिपनेका स्थान तुमने आज तक नहीं बताया। कहाँ छिपे थे तुम?'

मैं जोरसे हँस पड़ा, फिर बताने लगा, 'मित्र, दर असल मैं छुपा नहीं था, उजागर ही था। बस थोड़ी-थोड़ी देरमें अपना वेश बदल देता था। तुम्हें याद हो तो कुछ समय मैं गोविन्द बनकर तुम्हारे साथ रहा और कुछ समय मोहिनी बनकर। याद है गोविन्दसे तुम उन दिनों बोलते नहीं थे और मोहिनी तुम्हारे घर गोबरका काम करने न आती थी? तुम्हारी दृष्टि वेश पर थी, मुझपर नहीं।'

मित्र उछल पड़े। 'तो तुम छिपे नहीं थे, मुझे धोखा दे रहे थे! यह सरासर धोखा है। मेरी मिठाई वापस करो।'

'मिठाई तो मैं वापस कर दूँगा,' मैंने कहा, 'परन्तु जो बात मैं समझाना चाहता था, वह तुम अभी भी नहीं समझे।'

'वह क्या?'

'मित्र, बात हम अचिन्त्यके चिन्तनकी कर रहे थे न?' मैंने बात दुहराई।

'हाँ और मैंने कहा था कि अचिन्त्यके चिन्तनकी बात एकदम असम्भव, अव्यावहारिक और अनुपयोगी है।' उन्होंने अपना मत फिर दुहराया।

मैं बोला, 'मित्र, कहीं ऐसा तो नहीं कि जिस किसीका भी तुम चिन्तन किसी भी समय कर रहे होते हो, उसीमें तुम्हारे मित्रकी तरह वह अचिन्त्य ही तत्त्व चिन्तनके वेशमें बैठा हो और वास्तवमें तुम चिन्त्यका नहीं, अचिन्त्यका ही चिन्तन कर रहे होते हो, बस पहिचानते नहीं?'

मित्र गम्भीर हो गये। थोड़ी देर दोनों ओर मौन छाया रहा। अन्तमें उन्होंने ही मौन तोड़ा। बोले—'मित्र, क्षमा करना। अपनी बातको स्पष्ट रूपसे मुझे समझाओ।'

३. अब मुझे अपनी बात कहनेका अवसर था। सो कहना प्रारम्भ कर दिया—'चिन्तन क्या है? मस्तिष्कका किसी विषयके सम्बन्धमें ऊहापोह, अथवा मनका किसी भी स्थूल-सूक्ष्म या अतिसूक्ष्म विषयके विविध पक्षोंके सम्बन्धमें प्रथम संकल्प-विकल्प तथा तदनन्तर निश्चतार्थमें बुद्धिकी प्रवहमानता।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'यह ठीक है कि विषयके सम्बन्धमें चिन्तनका आधार इन्द्रिय-जन्य अनुभव, सुख एवं पूर्वका श्रुत संस्कार है। परन्तु हम यह भूल जाते हैं कि इन्द्रिय, मन और बुद्धिके प्रत्येक विषयाकार परिणामके गर्भमें, उन-उन ज्ञानावेशोंके पीछे, एक अपरिणामी और शान्त स्थिर सत्ता विराजमान रहती है; जिसका अनुभव हम सबको 'अहं'के रूपमें होता है। जिसका अनुभव होकर भी नहीं होनेके समान रहता है। हम विषयका तो दिन-रात चिन्तन करते हैं परन्तु विषयोंकी उपेक्षा कर देते हैं यद्यपि सम्पूर्ण विषयोंका चिन्तन इसी विषयीके लिए होता है।

'यदि कोई इस विषयीको जानता भी है तो वह भी इसको जगत्की वस्तुओं, देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, वासना, भोग और कर्मके सापेक्ष ही जानता है। वस्तुतः यह अहंके रूपमें स्फुरित होता हुआ विषयी क्या है, यह कोई विरला ही जानता है। निरपेक्ष सत्ताके रूपमें इसीको आत्मा कहते हैं।

'प्राकृतजनोंके लिए तो यह 'अहं' भी स्वयंसिद्ध होनेके कारण अचिन्त्य ही प्रतीत होता है और अविवेकियोंके लिए आत्मा भी अचिन्त्य प्रतीत होता है। परन्तु बोधवानोंके लिए प्रत्येक चिन्तनका सार यह आत्मा ही है। इसीसे उपनिषद्ने आत्माको प्रत्ययसार कहा है। इस प्रकार अहंत्वेन ज्ञात, किन्तु आत्मरूपसे अज्ञात आत्मा ही सामान्यतः अचिन्त्य है; परन्तु स्वरूपतः केवल वही चिन्त्य है।

'चिन्त्यके स्वरूपका विचार करने-पर अचिन्त्य ही प्राप्त होता है और अचिन्त्यके स्वरूपमें चिन्त्य केवल मानमात्र ही सिद्ध होता है।

'आत्मा ही अचिन्त्य है इसलिए उसके अस्तित्वमें कभी सन्देह नहीं है। मैं नहीं हूँ—ऐसी प्रतीति कभी किसीको नहीं होती। आत्माकी सिद्धि प्रमाणसे नहीं होती। प्रमाणसे जो सिद्ध होता है वह प्रमेय है। परन्तु प्रमाताके रूपमें आत्मा तो सब प्रमाणोंका प्रयोक्ता है। जिससे सम्पूर्ण प्रमाणोंकी सिद्धि होती है, वह प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता। सूर्य-ज्योतिकी भाँति यह आत्मा स्वयंप्रकाश ज्ञान स्वरूप है।

'यह प्रमाण-प्रमेयका व्यवहार भी आत्मनिष्ठ ही है, क्योंकि स्वयं प्रमाण और प्रमाणसापेक्ष प्रमेयकी प्रतीति और अप्रतीतिका अधिष्ठान यह स्वयं-प्रकाश आत्मा ही है।'

'यह ठीक है कि 'अचिन्त्य' आत्माका किसी भी प्रमेय वस्तुसे सम्बन्ध नहीं हो सकता, परन्तु कोई भी वस्तु बिना इस अचिन्त्य आत्माके कैसे अस्तित्वमें आ सकती है? जैसे मिट्टीके बिना घड़ा नहीं हो सकता और स्वर्णके बिना आभूषण। उसी प्रकार आत्मचैतन्यके बिना किसी भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रमेयकी सिद्धि नहीं हो सकती। जैसे मिट्टी निकालनेपर घड़ेकी और स्वर्ण निकाल लेनेपर आभूषणकी कोई उपयोगिता नहीं रहती, उसी प्रकार आत्मचैतन्यके बिना किसी भी प्रमेय वस्तुकी कोई उपयोगिता नहीं है। उपयोगिता सत्ताका लक्षण नहीं है, वह सत्ताका एक पक्ष है। उपयोगिता व्यक्तिनिष्ठ है जबकि सत्ता सार्वभौम है। उपयोगिता देशनिष्ठ और कालनिष्ठ है, परन्तु सत्ता देश और कालमें भी है। अतः उनसे अतीत है।

'तत्त्वविचार उपयोगितावाद नहीं है तथापि वह निरुपयोगी भी नहीं है। अतात्त्विक दृष्टि होनेसे मनुष्य राग, द्वेष, दुःख, अज्ञान, जड़ता, भय, अभाव, दीनता, हीनतासे आक्रान्त है। तत्त्वदृष्टि मनुष्यको वीतरागता, आत्म-तृप्ति और परम स्वातन्त्र्यका जीवन प्रदान करती है।

जीवनकी भयावह समस्याएँ हैं? मूलतः वे रोटी, कपड़े, और मकानकी समस्याएँ हैं। परन्तु परस्पर राग-द्वेष, स्पर्धा, वैमनस्य, व्यक्तिगत अहंकार, अभिमान और दर्पके कारण वे मूल समस्याएँ छूट गयी हैं और समाज विषमता, भय, तनाव और आतंकेका शिकार हो गया है। तत्त्वदृष्टि और उसके प्रचार-प्रसारसे समाज कम-से-कम इस दूषित वातावरणसे मुक्तिकी ओर तो अग्रसर होता ही है।

'रोटी, कपड़ा, और मकानकी समस्या सृष्टिमें अनादि कालसे है और मैं समझता हूँ, वह तब तक रहेगी जब तक सृष्टिमें मनुष्य रहेगा। इसलिए तत्त्वविचार उन समस्याओंके सुलझानेमें बाधक कभी नहीं हो सकता।

'यदि सृष्टिमें उपयोगी ज्ञानका क्रम-विकास भी मान लिया जाय तो भी उस ज्ञानका मूल केन्द्र भी कहीं सृष्टिमें होना चाहिए। ज्ञानका केन्द्र मनुष्यका मस्तिष्क ही है। अत वह: अचिन्त्य आत्मा ही सब ज्ञानोंका अक्षय कोष है। वैज्ञानिकके मस्तिष्कमें नये-नये आविष्कारोंका उद्भव जहाँसे होता है वहींसे एक वीतराग मनुष्यमें समाधिकी प्रज्ञाका उदय होता है। अतः तत्त्वदृष्टि-सम्पन्न महापुरुष जीव-नोपयोगी ज्ञानके प्रकाशका केन्द्र भी हो सकता है। जो वैज्ञानिक दृष्टिसे सम्पन्न मनुष्य नहीं हैं वे भी तो केवल उपभोक्ताका जीवन जीते हुए ही अपना जीवन काल बिता देते हैं। संसारकी कुल आबादीका मुश्किलसे आधा प्रतिशत भाग भी नवीन आवि-ष्कारोंका जनक नहीं है। परन्तु उनको कभी यह कहते नहीं सुना गया कि तुम भोग-चिन्तनमें अपनी आयु व्यर्थ क्यों व्यतीत कर रहे हो? सम्भवतः अपनेको बुद्धिमान समझने-वाले लोगोंने सारी दुनियाके मनुष्योंकी बुद्धिका ठेका ले लिया है कि कोई अमुक विषयका ही चिन्तन करेगा, अमुकका नहीं।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'विषय-चिन्तन बुद्धिको विषयके व्यामोहमें बाँधता है जबकि अचिन्त्य-चिन्तन बुद्धिको सर्वव्यामोहोंसे छुटकारा दिलाता है और बुद्धिको उत्तरोत्तर उपाजाऊ बनाता है। फिर अचिन्त्य-चिन्तन चिन्तन-शक्तिका दुरुपयोग कैसे ? उल्टे वह बुद्धिका चिन्तनशक्तिके मूलकेन्द्रके साथ संयोजन कर देता है।'

'अचिन्त्य वस्तु तुम स्वयं हो और तुम न लौकिक हो और न अलौकिक। लौकिक अलौकिक वस्तुओंका भेद वास्तविक नहीं है; क्योंकि दोनोंका प्रकाश एक ही स्थानसे होता है। स्वर्ग, नरक, देवी, देवता भूत, प्रेत अलौकिक हो सकते हैं परन्तु आत्मा, जो तुम स्वयं हो, वह वस्तु है जो इन सब लोक-अलोकसे सूक्ष्म है और जिसमें ही ये सब हो-हो करके मिट जाते हैं। वह ईश्वरोंका भी ईश्वर है। उसके चिन्तनका किसी भी चिन्त्य-विषयके चिन्तनसे मुकाबला नहीं हो सकता।'

'निष्कर्ष यह है मित्र ! कि 'अचिन्त्य' नाम आत्माका है जो सबको अहंत्वेन अनुभूत है। परन्तु जिसका वास्तविक अचिन्त्य स्वरूप सर्वसाधारणको अज्ञात है; क्योंकि वे लोग 'अहं'का आकलन सदैव ज्ञात पदार्थों, ज्ञात मानों और ज्ञात मूल्योंके आधारपर करते हैं। श्रुति, शास्त्र और गुरु इस आकलनपर ही चोट करते हैं और अहंतत्त्वमें ज्ञातका निषेध करके उसके अवतकके अज्ञात अचिन्त्य स्वरूपका दिग्दर्शन कराते हैं। तदनन्तर आत्मा जिस रूपमें अनुभवमें आता है वह सब स्वरूपतः अचिन्त्य ही है।

'कितनी विचित्र बात है कि मनुष्य सबको जाननेका तो प्रयत्न करता है और सर्वज्ञता अथवा बहुज्ञताका दम्भ भी करता है, परन्तु वह स्वयं अपने आपको नहीं जानता ! इसलिए मित्र ! आओ कुछ अचिन्त्यका चिन्तन करें जिससे अपना भी भला हो और दूसरोंका भी।

मित्र चुप थे। उठते हुए बोले—'मित्र, मुझे सोचनेको और समय चाहिए।' और वे फिर आनेका वायदा करके चले गये। मैं सोचता रहा 'सत्यका ग्रहण कितना कठिन होता है !'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीहरिसूरि-विरचितम्

श्रीभक्तिरसायनम्

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

पूर्वानुवृत्त

आसीन इति १०.२.२४

यद्वैरचिन्तनकृदप्यनिशं स कंसो-
ऽपश्यत्पदार्थमखिलं खलु कृष्णरूपम्।
तद्भक्ति-चारुरसरञ्जित-मानसा ये
पश्येयुरत्र नहि मानमपेक्ष्यतेऽन्यत् ॥३२॥

वह क्रूर-कर्मा कंस अहर्निश वैर-भावसे श्रीकृष्णका चिन्तन करता था और सभी पदार्थोंको कृष्ण-रूप देखता था। जब उसकी भी ऐसी स्थिति हो गयी, तब जो लोग भगवद्भक्तिके मधुर-रससे अपने मानसको रँग लेते हैं; वे सबको कृष्णरूप देखें यह सिद्ध करनेके लिए दूसरे प्रमाण-की आवश्यकता नहीं है।

ब्रह्मेति १०.२.२५

मत्क्लेशापहृतावयं कृतमतिः श्रुत्वा मदभ्यर्थितं
जानन्नेवमपीह यो न सदयं तं सेवते स्तौति वा।
नोन्मत्तो भुवि निस्त्रपस्तदपरो दुर्धीः कृतघ्नश्च वे-
त्यालोच्याच्युतमिष्टदं स्तुतिमतिः प्रागाद्विधिस्तत्क्षमम् ॥३३॥

मेरी प्रार्थना सुनकर इन्होंने मेरे क्लेशका नाश करनेके लिए निश्चय किया है। ऐसा जानकर भी जो उस दयालुकी सेवा या स्तुति नहीं करता, इस धरातलपर उससे बढ़कर उन्मत्त, निर्लज्ज, दुर्बुद्धि और कृतघ्न और कौन होगा? यह सोचकर ही भक्ताभीष्ट-चिन्तामणि प्रभुकी स्तुति करनेके लिए ब्रह्मा वहाँ आये, यह उचित ही है।

एतावत्कृतिभिस्तिरस्कृतिपदं नीतोऽस्मि वेदान्तिभिः
मन्वानैर्वयमेव सर्वविषयेष्वस्मिन् विरक्ता इति।
धन्योऽस्म्यद्य तु सर्वभूतजनकस्वीकारतः स्यामितो
मूर्तः स्तोतुमगादसौ किमु महासंसार एवेश्वरम् ॥३४॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसा लगता है मानो महासंसार ही मूर्तिमान् होकर परमेश्वरकी स्तुति करनेके लिए उपस्थित हुआ। महासंसारने अपने मनमें यह विचार किया कि इन वेदान्तियोंने यह अभिमान करके कि इस संसारमें हम ही सम्पूर्ण विषयोंके प्रति वैराग्यवान् हैं, अबतक अपने कृत्योंके द्वारा हमारा बहुत तिरस्कार किया है। अब मैं धन्य हो गया, क्योंकि सर्व प्राणियोंके पिता परमेश्वरने अवतार लेकर मुझे स्वीकार कर लिया।

न चेद् गर्भस्तदा कुत्र जीवो ब्रह्मेति संस्थितिः।
तत्प्रसादादिदं सर्वं युक्ता गर्भस्तुतिस्ततः ॥३५॥

यदि ऐसा न होता तो कहाँ गर्भ और कहाँ जीव ब्रह्म है यह स्थिति ! भगवत्कृपासे ही यह सब कुछ है। अतएव ब्रह्मा आदि देवताओं-ने गर्भस्तुति की।

सत्यव्रतमिति १०.२.२६

गर्भादिवासमवलोक्य जघन्यमीशो
वित्रस्य चेतसि न जातुचिदाजहातु।
सन्धां पुरा निजकृतामिति धातृमुख्याः
स्तोत्रापदेश-विधिनोचुरखण्ड-सत्यम् ॥३६॥

ब्रह्मादि देवताओंने अपनी स्मृतिमें सत्यव्रत आदि कहकर भगवान्-की महिमाका गान किया। ऐसा क्यों ? सम्भव है, ब्रह्मादि देवताओंने अपने मनमें विचार किया हो कि परमेश्वर गर्भादिवासको हीन समझ-कर अपने मनमें डर जायें और अपने पहलेकी कि हुई प्रतिज्ञाको छोड़ दें। यही सोचकर स्तोत्रके बहाने वे अखण्ड सत्यका निरूपण करने लगे।

समस्त-निगम-स्तुतोऽप्यखिलवस्तु-विस्तारको
वितस्तिमितिकोदरो वससि देवकीये प्रभो।
अतस्तव दयालुता पतिततापनिस्तारण-
व्रतेत्यथ च तद्वशः प्रभुरितीह किं न स्फुटम् ॥३७॥

प्रभु ! आप समस्त निगमागमके द्वारा स्तुत एवं अखिल वस्तु के विस्तारक होनेपर भी देवकीके बित्ते भरके पेटमें निवास कर रहे हो। इससे क्या स्पष्ट नहीं होता कि आपकी दयालुता पतितोंका ताप दूर करनेका व्रत लेकर बैठी है और प्रभु उसके अधीन हैं।

त्वयि सति जठरस्थे देवकीनाशभीति-
र्नहि खलु रिपुजाऽऽसीदत्र चित्रं न यस्मात्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकल-सुजन-लोकानामपीहाविशङ्कं
सपदि मृतिमुपेता देवकीनाशभीतिः ॥३८॥

हे प्रभु ! आपके गर्भस्थ होनेपर शत्रुसे देवकीके नाशका भय नहीं रहा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। क्योंकि असन्दिग्ध रूपसे समस्त सज्जन लोगोंका कालभय तत्काल मृत्युको प्राप्त होवे। संस्कृतमें की-नाश शब्दका अर्थ यमराज होता है। देवकीके नाशका भय और हे देव ! कीनाश (यमका भय) दोनों एक ही शब्दसे प्रकट किया गया।

यत्प्रत्यङ्गरुहान्तरङ्गतया ब्रह्माण्डमुद्योतते
यन्नाभ्युद्भवपद्मगर्भगतया हैरण्यगर्भस्थितिः।
यन्नामैव जनुष्मतामलमहो स्थिंद् गर्भकूलङ्कषं
स त्वं गर्भनिवास्यभूस्तदिह सद्वात्सल्यमाविष्कृतम् ॥३९॥

जिनके प्रत्यङ्गके रोम-रोममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड चिन्गारीके समान चमकते रहते हैं जिनके नाभि-पद्ममें हिरण्यगर्भकी स्थिति है और जिनका नाम ही मनुष्यके गर्भवासका सर्वदाके लिए निवारण कर देता है। वे आप स्वयं गर्भवासी हो गये। अवश्य ही सन्तोंके प्रति आपके स्नेह-वात्सल्यका ही यह आविर्भाव है।

त्वय्यम्बुजाक्षेति १०.२.३०

भवाब्धितरणे तरिर्भवति कृष्णपादाम्बुजं
विभाव्य निगमागमेष्विति समुत्सुकः सज्जनः।
विचित्रमवलोकितं यदवलम्बनादप्यसौ
भवाम्बुधिरगादलं सुलघु गोष्पदावस्थितिम् ॥४०॥

सज्जन पुरुष निगमागममें यह निश्चय करके कि भवसागरसे पार जानेके लिए श्रीकृष्णपादाम्बुज नाव हैं, उनकी प्राप्तिके लिए समुत्सुक होता है। हमने यह विचित्र देखा है कि भगवान्के चरणकमलोंका आलम्बन लेकर स्वयं भवसागर ही पर्याप्त छोटा और गोपदके समान हो गया।

आरूढाः पदवीं परामपि तपोयोगाद्वियोगादहो
भ्रश्यन्ति प्रकृतावनादृतभवत्पादाम्बुजाता यदि।
तद्वन्नाथ न तावकाः परिपतन्त्येतत् स्फुटं तद्बुधै-
रुक्तं गर्भनुतौ विलोक्य भवगज्ञातोऽस्मि ते सेवकः ॥४१॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जो भगवान्‌के चरणारविन्दका अनादर करते हैं। वे यदि तपस्या, ध्यान आदि योगके उपयोगसे परा-पदवीको भी पहुँच चुके हों, तब भी मायामें पतित हो जाते हैं। परन्तु गर्भ-स्तुतिमें महापुरुषोंके द्वारा कहे हुए यह वचन देखकर कि स्वामी! आपके सेवक उनके समान परि-पतित नहीं होते, मैं आपका सेवक बन गया हूँ।

दिष्टचेति १०.२.४१

धन्यमद्य भुवि भाग्यम्ब ते यन्न केनचिदवाप्तमंशतः।
दुर्लभा अपि विधीन्द्रशङ्कराः किङ्करा इव पदान्तिके यतः ॥४२॥

माँ देवकी इस धरातलपर तुम्हारा भाग्य धन्य है। इसका थोड़ा-सा अंश भी किसीको प्राप्त नहीं हुआ है। दूसरोंके लिए दुर्लभ ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र भी तुम्हारे चरणोंके पास किङ्करके समान हैं।

सन्ध्यातोऽपि चिरादचिन्त्यचरितश्चित्तेऽपि यो योगिनां
नैवायाति विकासमञ्चति न वा स्फूर्ति किलार्धक्षणम्।
सोऽयं पूर्णसुखः सुखान्निवसति त्वज्जाठरे कोटरे
मातस्तत्तव पुण्यवर्णनविधौ के नाम कीटा वयम् ॥४३॥

अचिन्त्य-चरित्र प्रभु चिरकाल तक भली-भाँति ध्यान करनेपर भी बड़े-बड़े योगियोंके चित्तमें भी न आते हैं, न विकसित होते हैं और न तो आधे क्षणके लिए भी स्फुरित होते हैं। वही पूर्ण-सुख परमात्मा सुख-पूर्वक तुम्हारे पेटके कोटरमें निवास कर रहे हैं। माता देवकी! तुम्हारे पुण्योंका वर्णन करनेमें हम कीड़े क्या हैं?

मातर्विश्वविधातृधात्रि निखिला देवेन्द्रमुख्या अपि
नप्तारो यदमी वयं तव पुनर्जाताः स्म तत्पाहि नः।
सन्तीमे शिशवस्ततो न गणयैतेषां त्वमागांस्यमून्
प्रीत्या पालय देहि चेप्सितमिति प्रोच्य स्वपुत्रं मुहुः ॥४४॥

माता देवकी! तुम विश्व-विधाताकी माता हो। हम सब देवेन्द्र आदि अब तुम्हारे पौत्र हो गये। सो हमारी रक्षा करो। ये सब तुम्हारे शिशु हैं। इनके अपराधोंकी ओर ध्यान मत दो, प्रेमसे इनका पालन करो और बारम्बार अपने पुत्र प्रभुको कहकर इनके अभीष्टको पूर्ण करो।

यत्नाकानकदुन्दुभि-ध्वनिरभूद्यज्जन्मनि श्रीमती
पत्नी यस्य च मूर्तमेव सुकृतं वृत्तिश्च तत्त्वार्थवित्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुत्रोऽपि प्रभुरिन्दिरापतिरयं सर्वेश्वराधीश्वर-
स्तत्किं वा वसुदेव नास्ति भवतस्त्रैलोक्यलोकोत्तरम् ॥४५॥

वसुदेव आपके जन्मके समय स्वर्गीय आनक-दुन्दुभिकी ध्वनि हुई। भाग्यशालिनी श्रीमती देवकी आपकी पत्नी हैं। आपका सुकृत मूर्तिमान् है। आपकी वृत्ति तत्त्वार्थवेदिनी है। आपके पुत्र हैं—इन्दिरापति। सर्वेश्वराधीश्वर प्रभु ! आपकी कौन-सी ऐसी वस्तु है जो त्र्यलोक्यसे लोकोत्तर न हो।

सुत्रामा - ऽनल - धर्मराज - निकषोद्भूताऽप्पति-स्पर्शन-
त्र्यक्षस्नेहिमहेश्वरान् वसुदिशामीशांस्त्वदङ्घ्रिस्पृशः।
कृत्वा यद्वसुदेव येन विहितं नामापि तेऽन्वर्थकं
तद्वाच्यं तव किं सुतं कथय तं नित्याऽस्मदीयावनम् ॥४६॥

इन्द्र, अग्नि, यमराज, निऋति वरुण, वायु, कुवेर और शङ्कर ये आठ दिशाओंके स्वामी अष्टवसुओंको तुम्हारे चरण-स्पर्शी वनाकर, हे वसुदेवजी ! जिन्होंने तुम्हारे नाम वसुदेव (आठ वसुओंके आराध्य देव) को भी सार्थक बना दिया है अपने उन पुत्र भगवान्से नित्य हमारी रक्षाके लिए कहते रहे। तुम्हारे बारे में तो हम कहें ही क्या ?

गर्ह्योऽप्यर्हतमेन चेन्निजपदं नीतस्तदानीं जगद्-
वन्द्यानामपि वन्द्यतापदमसौ सञ्जायते यत्स्फुटम्।
गर्ह्यं गर्भनिवासमप्यजमुखां देवाः समग्रा अपि
दृष्ट्वा श्रीशपदश्रियं सुनतयः सन्तो मुहुः प्रास्तुवन् ॥४७॥

नीच-से-नीच पुरुषको भी यदि श्रेष्ठ-पुरुष निज पदको प्राप्त करा दे तो वह जगत् वन्द्योंका भी वन्द्य हो जाता है। गर्भ-निवास निन्दनीय है। परन्तु उसमें श्रीपति पदकी शोभा देखकर ब्रह्मा आदि समग्र देवता प्रणत होकर बारम्बार उसकी स्तुति कर रहे हैं।

श्रीशकल्पतरु- क्रीडाफल - भक्तिरसायने।
मुदे भवतु साधूनामध्यायार्थनिरूपणम् ॥

यह भक्तिरसायन श्रीपतिरूप कल्पतरुका क्रीडाफल है। यह अध्यायार्थका निरूपण सत्पुरुषोंके लिए आनन्ददायी हो।

इति श्रीमन्नासिकनिवासि कविवर-हरिसूरिविरचिते
भक्तिरसायने द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथ तृतीयोऽध्यायः

अथ सर्वगुणेति १०.३.१

यः सर्वैकगुणाश्रितो निगदितः कालो जनानिष्टकृत्
सोऽपि श्रीमदधोक्षजोदयतयाऽजन्युत्तमः शोभनः।
किं वाच्यं स्थितिसर्गजृम्भणगुणाक्रान्तस्य दिष्टस्य वा
भ्वादिनां स्थितिरित्यभूत्स्फुटमिह प्राग्दिष्टतद्वर्णनात् ॥१॥

भगवान् श्रीकृष्णके अवतारके समय काल अन्तरङ्ग रूपसे गुणाश्रय और बहिरङ्ग रूपसे सुहावना हो गया। श्रीहरिसूरि इसपर उत्प्रेक्षा करते हैं कि जो सर्व अर्थात् शिवके गुण तमोगुणसे युक्त संहारकाल लोगोंके लिए अनिष्टकारी कहा गया है वह भी श्रीमान् अधोक्षजके अवतारके कारण उत्तम और शोभन हो गया। फिर उत्पत्ति-स्थितिके विलास गुणोंसे युक्त कालके सम्बन्धमें अथवा पृथिवी आदिके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या? पहले कालका वर्णन करनेसे यह भाव स्पष्ट होता है।

प्रजारूपेणाहं बहु भवितुमिच्छामि च यदा
ततः पूर्वं सर्वं निरवधितमस्तोमकलितम्।
इतीव श्रुत्यर्थद्वयमिदमबोधि स्फुटमिह
तथादिष्टोल्लेखाद् ध्रुवमजनजन्मेति पदतः ॥२॥

'जब मैं बहुत हो जाऊँ, प्रजाके रूपसे प्रकट होऊँ'—यह इच्छा करता हूँ, उससे पूर्व सबका सब अपार अन्धकार-राशिसे ग्रस्त ही रहता है। जान पड़ता है कि यहाँ श्रुतिके दोनों भावको मानो स्पष्ट किया गया है, पहले तो कालका उल्लेख है और दूसरे अज न जन्मा शब्दका प्रयोग है। अजनजन्मा शब्दका अर्थ है अजन अर्थात् नारायणसे जिनका जन्म हुआ उन ब्रह्माका नक्षत्र रोहिणी।

सन्मार्गमेव स्वच्छाशं कर्तुमभ्युद्यते विधौ।
युक्तैव कान्तिः शान्तिश्च सदा सत्पथवर्तिनः ॥३॥

संस्कृतमें 'विधु' शब्दका अर्थ चन्द्रमा और विष्णु दोनों होता है। जब वे सन्मार्गको स्वच्छ दिशा देनेके लिए उदित होते हैं या उद्यत होते हैं तब आकाशगामी अथवा सन्मार्गगामी लोगोंकी कान्ति और शान्ति स्वतः सिद्ध ही है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सकलगुणान्वयशोभिनि सर्वज्ञे श्रीपतौ समवतीर्णे।
भूमिजबुधगुरुकवयः सुखोदयं प्रापुरेतदिति युक्तम् ॥४॥

जब सकल गुणयुक्त शोभासम्पन्न सर्वज्ञ श्रीपति ही अवतार ग्रहण-कर रहे हैं तब मंगल, बुध, गुरु, शुक्र अथवा भूमिपर रहनेवाले विद्वान् गुरु एवं कवि सुखी हो जायें यह उचित ही है। कविने 'भूमिज' शब्दसे लाभ उठाया है। भूमिज माने मंगल और भूमिपर जन्म ग्रहण करने-वाले।

वाच्ये सति प्रसिद्धे सिद्धस्तद्वाचकोऽच्छ्रयो लोके।
प्रणवोल्लासिनि भगवति युक्तोऽसावमलतारकोल्लासः ॥५॥

जब वाच्यार्थं प्रसिद्ध होता है तब लोकव्यवहारमें उसके वाचक नामकी उन्नति स्वाभाविक ही है। जब प्रणवोल्लासी भगवान्ने जन्म लिया तो अमल तारक मण्डलका उल्लास युक्ति-युक्त ही है। 'तारक' शब्दका अर्थ है ओंकार और आकाशके तारे।

दिशः प्रसेदुरिति १०.३.२

रिपुजातभयोज्झिताधिकारैः पतिभिः साकमितोऽचिरेण योगः।
प्रभवेदिति ता दिशः प्रसेदुर्भुवि जन्मैशमवेक्ष्य कंसहन्तृ ॥६॥

भगवान्के धरतीपर कंसनाशक जन्मको समझकर दिशाएँ प्रसन्न निर्मल हो गयीं। वे देवता हैं, भला क्या सोचती होंगी? कंस जैसे शत्रुओंने हमारे पति-दिक्पालोंका अधिकार छीन लिया था। अब शीघ्र ही उनका संयोग प्राप्त होगा ऐसा सोचकर।

हरित्व हरावेवमेवासु सिद्धं निराबाधमस्तीति युक्तं दिशस्ताः।
सुभव्येऽच्युतात्मप्रसन्नोदये सत्यलं प्रापुरच्छाच्युतात्मप्रसादम् ॥७॥

संस्कृतमें दिशाका वाचक हरित् शब्द है। हरि और हरित् दोनों शब्दोंका भावमें रूप बनता है हरित्व। कविका कहना है कि दिशाओंका हरित्व हरिमें ही निर्बाध सिद्ध है। इसलिए वे अच्युतात्मा प्रभुके प्रसन्न मङ्गल-उदय कालमें पर्याप्त स्वच्छ एवं अच्युत आत्म-प्रसादसे युक्त हो गयीं।

आशाः प्रसादफलकाः सकला अपोह
भूमौ भवेयुरचिरादमलस्थितीनाम्।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्थोऽस्त्वयं सुविशदोऽर्थंत इत्यबोधि
प्रायः प्रसेदुरनिशं दिश एवमुक्त्या ॥८॥

संस्कृतमें आशा शब्दका दो अर्थ है, मनमें रहनेवाली आशा और दिशाएँ। आशारूप दिशाओंने प्रायः निर्मल प्रसन्न होकर अक्षुण्ण रूपसे यह अर्थ बताने लगीं कि अब निर्मल स्थिति महात्माओंकी सभी आशाएँ प्रसाद फलसे परिपूर्ण हो जायेंगी, इसी धरतीपर। दिशाएँ निर्मल हो गयीं—यह कहकर यही भाव प्रकट किया गया है।

दुर्दान्तोद्धतदैत्यदत्तविपदां तत्क्लेशनार्थिकां
श्रोतुं वाचमदुहृद्दां सदयधीर्दत्तावधानः सदा।
अस्त्येव प्रभुरित्यशङ्कमखिलस्पष्टावगत्यै तदा
युक्तं ता निखिलाः प्रसेदुरमलास्तच्छ्रोत्ररूपा दिशः ॥९॥

सभी दिशाओंने निर्मल-प्रसन्न होकर यह सूचित किया कि जिन लोगोंने दुर्दमनीय उद्धत दैत्योंके द्वारा दी हुई विपत्तियोंसे ग्रस्त होकर उस क्लेशका नाश करनेके लिए भगवान्से प्रार्थना करते रहते हैं, परम दयालु परमात्मा उन सज्जन सरल साधुओंकी प्रार्थना-वाणी सुननेके लिए सदा सावधान रहते हैं। यह बात सबकी समझमें आजाये, इस अभिप्रायसे परमात्माकी श्रोत्र-रूप दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। शास्त्रोंमें दिशाओंको भगवान्का कान कहा गया है।

साधारणोऽपि सुकृती यदि यत्कुले स्यात्
तत्पूर्वजो भवति तेन हि निर्मलात्मा।
युक्तं तदेशजनुषोडुगणोच्छकान्ति-
र्ह्यासीदसौ यादिह पूर्वजपुंप्रियात्मा ॥१०॥

साधारण पुण्यात्मा भी यदि किसीके वंशमें प्रकट हो जाये तो उससे पूर्वज प्रसन्न हो जाते हैं।' यह ठीक ही है कि चन्द्रवंशमें श्रीकृष्णका जन्म होनेसे 'तारागणकी कान्ति स्वच्छ हो गयी; क्योंकि तारापति चन्द्रमा इनके पूर्वज हैं। उन्हींके वंशमें श्रीकृष्णका जन्म हुआ है।

हरावुदयमासन्ने सहस्रगुणशोभिनि।
भुवने पुष्करोल्लासो युक्त एवेति विद्महे ॥११॥

सहस्र-सहस्र रश्मियों अथवा गुणोंसे शोभा-सम्पन्न हरि माने विष्णु अथवा सूर्यके प्राप्त होनेपर भुवन अर्थात् चौदहों भुवन या जलमें,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पुष्कर = आकाश या कमलका उल्लास, युक्ति-युक्त ही है—ऐसा हम समझते हैं।

यस्माद्रसः स्रवति सर्वमलापहारी
यद्राजहंसपदमाश्रयदं द्विजानाम्।
यद्भाति मानसमिवाच्छसमग्रतारं
युक्तं वियत्तदमलं च सुशोभमासीत् ॥१२॥

जिससे सर्वमलापहारी रसका क्षरण होता है, जो राजहंस (सूर्य चन्द्रमा या पक्षी)का स्थान है और द्विज (ब्राह्मण एवं पक्षियों)को आश्रय देता है, वह मानस-सरोवरके समान आकाश नक्षत्ररूप मुक्ता-ताराओंसे मण्डित होकर निर्मल एवं शोभा सम्पन्न हो जाये यह युक्त ही है।

मही मङ्गलेतिः

ध्येयं योगिभिरर्च्यमाश्रितजनैर्गेयं हि देवर्षिभिः
सेव्यं भव्यदया च यत्सदयया सर्वाढ्ययाऽपि श्रिया।
तच्छ्रीमत्पदमद्य मय्यविरतं सञ्चारशीलं भवे-
दित्यानन्दयुता तदाऽवनिरभून्माङ्गल्यतोऽलङ्कृता ॥१३॥

योगी लोग जिनका ध्यान करते हैं, आश्रितजन अर्चना करते हैं, देवर्षिगण गान करते हैं, मङ्गलदायिनी दयामूर्ति सर्वगुण सम्पन्न लक्ष्मी जिनकी सेवा करती हैं वही प्रभुके श्रीमान् चरणकमल मुझपर अनवरत सञ्चारशील होंगे, यह सोचकर पृथिवी देवी आनन्दित होकर मङ्गल अलंकारसे अलंकृत हो गयीं।

त्वदीय–परिधान–सद्वसनवास्यसौ मत्पति-
स्ततो भृशमदुर्लभो भवति भोगयोगोऽस्य ते।
इति प्रियसखीकृतं समुपहासमन्वर्थतो-
ऽचिरादनु—भवेयमित्यवनि - राप्तभव्याऽभवत् ॥१४॥

हमारी सखियाँ कभी-कभी मेरा उपहास किया करती थीं कि हमारे स्वामी भगवान् तुम्हारे परिधानका सद्वस्त्र पीताम्बर धारण करते हैं। (पृथिवीका रग पीला है) अतः तुम्हारे लिए इनका भोग-योग सुलभ है। पृथिवीने विचार किया, सखियोंका परिहास अब सच होगा, मैं वैसा ही करूँगी। इसीसे मङ्गल श्रृंगारसे अपनेको अलंकृत कर लिया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आयाते क्वचिदेव सद्मनि निजे जानातरि प्रेमतः
कन्यामातुरतीव चेतसि भवत्यानन्द एतत्स्फुटम् ।
सर्वत्रेति न चित्रमत्र यदभूत्सा भूमिरानन्दभाक्
सीताभर्तुरनामयाऽऽगमनमालक्ष्याऽखिलाधीशितुः ॥१५॥

कभी अपने घरमें अपना जामाता आजाये तो प्रेमके कारण कन्या-माताके हृदयमें अतिशय आनन्दका उदय होता है, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि विश्वनाथ सीतापतिके शुभ आगमनको देखकर पृथिवी आनन्दित हो गयी।

पुरा वराहवर्ष्मणोद्धृता द्विजाग्रतोऽप्यहं
न तद्विहार-सौख्यभागभूवमेवमंशतः ।
पदे पदे पदाम्बुज-प्रचारसारं सौख्यभा-
गितो भवेयमित्यभूदिला समुत्सुमङ्गला ॥१६॥

सृष्टिके प्रारम्भमें वराह शरीर धारण करके इन्होंने ही दाँतोंके नोंकसे मेरा उद्धार किया था, परन्तु मुझे इनके साथ विहारका थोड़ा-सा भी सुख नहीं मिल सका, अब मैं पद-पदपर इनके पदाम्बुज सञ्चारका सारा सुख प्राप्त करूँगी। मानो इसी भावसे पृथिवी सानन्द एवं मङ्गलमयी हो गयी।

(सावशेष)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्त दामाजी महाराजकी यशोगाथा

(श्री यशवन्त बलवन्त क्षीर सागर, बम्बई)

सन्त श्री तुकाराम महाराजका एक अभंग महाराष्ट्रमें बड़े प्यारसे गाया जाता है—

जे का रंजले गांजले ।
त्यासि म्हणे जो आपुले ।
तोचि साधु ओलखावा
देव तेथेचि जाणावा ॥
मृदु सबाह्य नवनीत
तैसे सज्जनांचे चित्त ।
ज्यासि आपंगिता नाही
त्यासी धरी जो हृदयी ॥
दया करो जे पुत्रासी
तेचि दासा आणि दासी ।
तुका म्हणे सांगू किती
तेचि भगवंताची मूर्ति ॥

जो दुःखी, पीड़ित लोगोंको 'अपना' मानता है उसे ही साधु समझिये और उसीमें भगवान्‌को पहचानिये। ऐसे सज्जनोंका अन्तःकरण नवनीतकी तरह अन्तर्बाह्य मृदु रहता है। वे बेसहारेको अपने हृदयसे लगाते हैं। अपने पुत्रके प्रति होनेवाला स्नेह वे अपने दास-दासियोंके प्रति बरसाते हैं। तुकारामजी कहते हैं, 'मैं और क्या कहूँ ?' वे (सज्जन) साक्षात् भगवान्‌की मूर्ति हैं।

सन्तके गाये हुए इन लक्षणोंको जीवनमें धारण करनेवाले एक महात्माने पन्द्रहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रमें जन्म लिया। उन उदारचरित महापुरुषका नाम हुआ सन्त दामाजी महाराज। भारतवर्षमें कर्णका नाम जैसे परमौदार्य-सूचक है, उसी तरह महाराष्ट्रमें सन्त दामाजीका नाम परम उदारोंकी कक्षामें आता है।

सन्त दामाजीपन्त महाराजका पूरा नाम या वंशकी जानकारी आज उपलब्ध नहीं है।[१] लेकिन एक बात निश्चित है कि, उनके जीवनकालमें महाराष्ट्रके सामाजिक जीवनमें अन्धेरा-सा छा गया था। सन्त ज्ञानेश्वर, सन्त नामदेव इन भगवद्भक्तोंका जीवन पूरा होकर कुछ समय बीत चुका था। मुसलमानोंका प्रभाव बढ़ गया था। हिन्दुओंका देवगिरिका राज्य नष्ट हो गया था। बहामनी राज्यके भी टुकड़े हो गये थे। उस समय बिदरमें जो मुसलमान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

राज्य था, उसका क्षेत्र सोलापुर, पंढरपुर, मंगलवेढा आदि विभागों तक फैला था।

शके १३८० (ई० स० १४५८)के लगभग, सन्त दामाजी विदरके वादशाहके पास नौकरी करते थे। हिन्दू होकर भी बादशाहके दरबारमें आपकी बड़ी इज्जत थी। आप अपना नित्य-नेम, पूजा-अर्चा बड़ी दक्षतासे करते और कभी-कभी आपको राजाकी सेनाके साथ शहरके बाहर घूमना पडता।

कहते हैं, कि एक दिन ऐसे ही घूमते-फिरते सन्त दामाजी पन्त श्री पंढरपुर पहुँचे। उस समय पंढरपुर उतना प्रसिद्ध नहीं था जितना बादमें श्री तुकाराम आदि सन्तोंके आनेपर हुआ। श्री पंढरिनाथ-का विग्रह देखकर श्री दामाजी महाराजकी उन चरणोंसे प्रीति हो गयी और वे श्री पंढरिनाथके भक्त हो गये।

बादशाहने सन्त दामाजी महाराजका कर्तृत्व देखकर उन्हें मंगलवेढा विभागके तहसीलदारके पदपर नियुक्त किया। मंगलवेढा पंढरपुरसे सिर्फ १८ मील दूरीपर है। भक्त श्री दामाजी महाराजको बड़ा आनन्द आया, क्योंकि उन्हें समय-समयपर चन्द्रभागा नदीमें स्नान करते और अपने प्यारे पंढरिनाथका दर्शन।

शके १३१८ से १३९८ तक (ई० स० १३९६-१४७७) महाराष्ट्रमें चार बड़े अकाल पड़े। शके १३८०में पड़ा हुआ अकाल बड़ा उग्र था। सभी देशमें हाहाकार मच गया। यह अकाल सरकारी पत्रिका (गजट)में—दामाजी पन्तका अकाल नामसे प्रकाशित किया गया।

इस अकालके समय मंगलवेढाके तहसीलदार बने। श्री दामाजी पन्त महाराज और उनकी पत्नी सावित्री देवी गाँवमें आये हुए क्षुधार्तोंको अपने घर खिलातीं, उन्हें अनाज बाँटती। यह बात जब पंढरपुर आदि अड़ोस-पड़ोसके विभागोंमें पहुँची। तब हजारोंकी भीड़ मंगलवेढामें श्री दामाजी महाराजके पास आने लगी।

बड़ी गम्भीर समस्या उत्पन्न हुई, क्योंकि दामाजी महाराजके घरका अनाज तीव्रगतिसे समाप्त हो रहा था। समय बढ़ता गया और समयके साथ लोगोंकी भीड़ और भी बढ़ती गयी।

मंगलवेढामें विदरके बादशाहकी अनाजकी दो कोठियाँ थी। (महाराष्ट्र भाषामें इन्हें कोठार या पेंव कहते हैं।) इन कोठियोंका नाम गङ्गा-जमुना था और उनमें हजारों मन अनाज भरा हुआ था। श्री दामाजी पन्त महाराजने तुरन्त विदरके बादशाहको चिट्ठी लिखी और इन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कोठियोंमें-से भूखे लोगोंको अनाज वेचनेकी अनुज्ञा माँगी ।

लेकिन उस समय विदरकी गद्दी-पर विराजमान वादशाह हुमायूँशाह वड़ा अन्यायी और क्रूर था। इतिहासकारोंने, इस बादशाहको 'जालिम' शब्दसे सम्वोधित किया है। श्री दामाजी महाराजको चिट्ठीका कुछ उत्तर ही नहीं मिला।

समस्या और जटिल हुई। विना अनुज्ञा अगर लोगोंको अनाज दिया जाय, तो वादशाह मौतकी सजा देता और गरीव लोग भूखसे तड़प-तड़प-कर मौतके फन्देमें फँस रहे थे।

कोमल चित्तके सन्त दामाजी पन्त महाराज शान्त नहीं रह सकते थे। उन्होंने सभी परिणामोंको ध्यानमें रखकर वड़ी वहादुरीसे निर्णय लिया और दोनों कोठियाँ लोगोंके लिए खुलवा दी। उनके हृदयमें विराजमान श्री पंढरिनाथ सब कुछ देख रहे थे।

कहते हैं कि हजारों लोग ये दोनों कोठियाँ आठ दिनतक लूटते रहे। पोटली बाँध-बाँधकर अनाज अपने घरमें ले जा रहे थे और सन्त श्री दामाजी पन्त महाराजको अन्तः-करणसे दुआ देते थे।

सन्तका यश चारों ओर फैल गया। लेकिन फल वही निकला, जिसकी सभीके मनमें आशङ्का थी। किसी आदमीने बादशाहको कोठियाँ लुटवानेकी खबर पहुँचा दी। राजा वड़ा क्रोधित हुआ और श्री दामाजीको विदर-दरवारमें हाजिर करनेके लिए उसने घुड़सवार भेजे।

सन्त दामाजी महाराज जब घुड़-सवारोंके साथ विदरकी ओर निकले तब सभीके मनमें उदासी छा गयी। उनके जीवित लौटनेकी विल्कुल सम्भावना नहीं थी। सन्तको होनेवाले कष्टको देखकर मंगलवेढा, पंढरपुर आदि विभागके सभी लोग दुःखी हो रहे थे।

मंगलवेढासे विदर जानेका मार्ग पंढेरपुर होकर जाता है। (हालमें बिदर गुलबर्गाके पास, कर्नाटक राज्यमें समाविष्ट है) रास्तेमें श्री पण्ढरिनाथका दर्शन भी इस महाभागने किया होगा। मंगलवेढासे विदर कुल १८० मीलका रास्ता है।

प्रभुका अवतार

उस समय 'महार' जातिके लोग हर तहसीलमें सरकारी व्यवस्थामें महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे। स्वभावसे नेक और शूर होनेसे, उन्हें तहसीलमें जमा हुआ कर या द्रव्य राजाके पास या अन्य स्थानोंपर पहुँचानेकी जिम्मेदारी सौंपी जाती। (भारतीय संविदके शिल्पकार डॉ० वावा साहब अम्वेडकरने इसी जातिमें जन्म लिया थे।

भगवान् श्री पण्ढरिनाथ अपने परम दयालु भक्तकी विवशता देखकर चुप नहीं वैठ सकते थे। उन्होंने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऐसी लीला रची कि वे श्री विट्ठलसे विठू महार बन गये और दामाजी महाराजके सेवक बनकर, उनसे पहले बिदरके दरबारमें पहुँच गये। काला-कलूटा वर्ण, कमरमें लंगोटी, कन्धेपर कम्बल, हाथमें लाठी, पैरोंमें टूटे जूते-इस वेषमें बादशाहको मुजरा (जोहार माय-बाप जोहार) करते हुए उसके सामने खड़े हो गये।

'विठू महार'ने बादशाहको बताया कि 'मैं श्री दामाजी महाराजका सेवक हूँ और उन्होंने मंगलवेढामें जो अनाज लुटाया उसका दाम लेकर, उनके पाससे आया हूँ।'

इतना कहकर 'विठू महार'ने अपने कमरकी झोली खाली की और जमीनपर मुहरोंकी राशि खड़ी हो गयी। बादशाह तो लालची था ही। वह बड़ा चकित हुआ और खुश भी। 'विठू महार' बड़े अदबसे वहाँसे निकल पड़े।

श्री दामाजी महाराज सिपाहियों-के साथ जब बिदरके दरबारमें आ पहुँचे, तब सारा चित्र पलट गया था। उन्होंने सब कुछ जान लिया। भगवान्को अपने लिए उठाये कष्टको देखकर इन महान् भक्तका हृदय विह्वल हो गया। सन्त दामाजी महाराजकी एक ही काव्य रचना उपलब्ध है। उसमें वे गाते हैं—

हर हर, विठ्ठल जगदुद्धार
जाहला महार मजसाठी॥

धन्य बेदरीचा बादशाह
त्याचा केला भी अन्याय।
धान्य लुटण्याचा उपाय
पूर्ण अपाय मजसाठी॥१॥

षड्गुण-ऐश्वर्य श्री भगवान
सांडून देवपणाचा अभिमान।
पायी घालोन तुटकी वहाण
नेसला जीर्ण लंगोटी॥२॥

माथा बांधून चिंध्याभार
काले कांबले स्कंधावर।
मुखाने म्हणत असे 'जोहार'
काला दोरा निज कंठी॥३॥

ऐसे का केले देवा
माझ्या सुकृताचा ठेवा।
महार झालासि रे माधवा
लावून वणवा मजसाठी॥४॥

ज्याचे धान्य लुटले जाण
तो तरी घेता माझा प्राण।
दामा म्हणे गुणनिधान
मज भेटी जग जेठी॥५॥

'हाय-हाय हे जगदुद्धारक विट्ठल प्रभू! तुम्हें मेरे लिए 'महार' बनना पड़ा। आपका दर्शन पाकर बेदरका बादशाह धन्य हो गया। अनाज लुटानेका मेरा उपाय बिल्कुल (उसे) अन्याय कारक ही था।'

मेरे लिए षड्गुण ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान्ने अपना देवत्वका बडप्पन छोड़ा। टूटे जूते, जीर्ण लंगोटी परिधान धारण किया। माथेपर फटा वस्त्र, कन्धेपर कम्बल, गलेमें काला डोरा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पहनकर 'जोहार' (मुजरा) करते हुए भगवान् आये।

आपने ऐसा क्यों किया भगवन्! आप तो मेरे सुकृतके खजाना हैं। आपने 'महार' बनकर मेरे दिलमें दावानलका निर्माण किया है।

मैंने जिस (बादशाह)का अनाज लुटाया वह अगर मेरे प्राण लेता तो भी ठीक होता। दामाजी कहते हैं कि हे गुणनिधान, जगच्चालक प्रभु, मुझे एक बार दर्शन दें।

कहना न होगा कि इस अलौकिक प्रसंगसे श्री सन्त दामाजी महाराजके मनमें भगवान्के प्रति गहरी प्रीति उमड़ पड़ी। संसारसे वैराग्य हुआ और उन्होंने अपना शेष जीवन पंढरपुरमें निवास करके श्री पंढरिनाथ महाराजकी सेवामें व्यतीत किया।

श्री पंढरिनाथ भगवान्के पदचिह्न

पाठकोंको यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि श्री पंढरिनाथ भगवान् पाँच सौ साल पूर्व 'विठू महार' बनकर जब बिदरमें पहुँचे तभीसे आजतक उनके दो पदचिन्ह, लोहेकी जाली लगाकर, वहाँपर सुरक्षित और सम्मानित रखे गये हैं। प्रभुका एक पदचिन्ह बिदर शहरकी शहागंज सीमापर है और दूसरा बिदरके किलेमें पड़ा है। अभी भी वारकरी (भागवत) भक्त इन पदचिह्नोंकी पूजा-अर्चा करते हैं। आषाढ़ एकादशी, तथा माघवदी एकादशीके पर्वपर इन पदोंके सामने विशेष उत्सव, भजन-कीर्तन किया जाता है।

आश्चर्य इस बातका है कि इस प्रसंगको अभी लगभग पाँच सौ साल पूरे हुए हैं और उस कालसे भारतीय स्वतंत्रता-पूर्व कालतक बिदरमें प्रायः मुसलमान राज्य हमेशा रहा है। इसी हालतमें प्रभुके ये दो चिह्न सम्मानित और सुरक्षित रहना, भगवान्की एक लीला माधुरी ही समझनी चाहिए।

मंगल वेढा शहरमें आज भी एक जगह बतायी जाती है जहाँ उस कालमें दो 'गंगा-जमुना' अनाजकी कोठियाँ थीं। आज वहाँपर एक तालाब दिखायी पड़ता है।

भक्त दामाजी महाराजकी कथा महाराष्ट्रमें खूब फैली गयी है। सन्त तुकाराम, सन्त एकनाथ आदि सन्तोंने तथा अनेक कवियोंने इस अद्भुत प्रसंगपर सुन्दर भाव प्रकट किये हैं।

सन्त तुकारामजी महाराज सन्त दामाजी महाराजका गौरव करते हुए गाते हैं—

'तुका म्हणे विठो अनाथ कैवारी।
नुपेक्षी हा हरि दासा लागी॥

मेरा श्रीविट्ठल भगवान् अनाथोंका कैवारी (पक्षपाती) है। वह अपने दासोंकी, भक्तोंकी, उपेक्षा कभी नहीं करता।'

सन्त एकनाथ महाराज गाते हैं—

'घेअनिया द्रव्य निघाला तो हरो।
जाहर-जोहर करी बादशाहाते॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्रव्य देअनिया रसीद घेतली।
भक्ताची माऊली विठाबाई॥
एकाजनार्दनी भक्ता चिया साठी।
धावे पाठा पाठी भक्ता चिया॥

—भगवान् श्रीहरि स्वयं विठू महार बनकर बादशाहके सामने उपस्थित हुए। द्रव्य गिनकर उन्होंने रसीद ली। सचमुच श्री विठ्ठल भक्तोंकी माँ ही हैं। श्री जनार्दन महाराजके शिष्य श्री एकनाथजी कहते हैं—'हमारे प्रभु भक्तके रक्षाके लिए उसके पीछे दौड़ते हैं।'

श्री सन्त दामाजी महाराजका शरीर श्री विठ्ठल-चरणोंमें पंढरपुरमें, वैशाख पूर्णिमाके दिन छूटा और उनकी कुछ अस्थियाँ मंगलवेढामें लायी गयी। आप मंगलवेढामें सन्तका समाधि मन्दिर खड़ा है। वैशाख शुक्ल एकादशीके दिन वारकरी भक्त पंढरपुर जमा होते हैं, द्वादशीको पंढरपुरमें रहकर त्रयोदशीको मंगलवेढा पहुँचते हैं और पूर्णिमा तक समाधि-मन्दिरमें बड़े प्रेमसे उत्सव मनाते हैं। वैशाख कृष्ण प्रतिपदाको गंगा-जमुना कोठियोंके स्थानपर कीर्तन करके भक्त लोग सन्त दामाजी महाराजसे विदाई लेते हैं।

भक्त दामाजी महाराज महाराष्ट्रके सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवनमें इतने मिल गये है कि शायद ही कोई उनसे कभी विदा हो सके। करुणा-निधान सन्त ही इस सृष्टिके बड़े आधार हैं।

●

भक्तको इन आठ बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

१. नामजप, कीर्तन और गुणगान—ये भक्तिके मुख्य साधन हैं।
२. साधुसङ्ग करना।
३. सांसारिक चर्चासे बचना।
४. दूसरोंकी निन्दा न तो सुने और न करे।
५. स्वयं अमानी रहकर दूसरोंको मान दे।
६. किसीका चित्त न दुःखावे और यदि दूसरे चित्त दुःखानेका काम करें तो स्वयं दुःखी न हों।
७. अपनी प्रतिष्ठाको विष्ठावत् समझे।
८. सर्वदा सच्चरित्र होकर जीवन व्यतीत करे।

—श्रीउड़िया बाबाजी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संन्यास-जयन्ती

७-२-७९

प्रवचनकार: अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती

संकलनकर्त्री: डा० श्रीमती उर्वशी जे० सूरती

जन्मोत्सव मनानेकी रीति तो आप लोगोंमें भी है। उसे क्या बोलते हैं? वर्थ-डे? असलमें वह भी संन्यास ही है। मनानेवाले नहीं समझते। उसमें संन्यास क्या है? अब हमें पशुयोनि, पक्षीयोनि, राक्षसयोनि और देवयोनिसे मुक्ति मिली। हम मनुष्ययोनिमें आये। दूसरे जन्मोंसे छूटकर ऐसी योनिमें आना, ऐसा जन्म मिलना जो 'साधन-धाम मोक्ष कर द्वारा' है।

हम पशु, पक्षी, चींटी, खटमल, साँप या बिच्छू होते! ईश्वरकी कृपासे, सद्भाग्यसे, सत्कर्मसे उन सब योनियोंका त्याग हुआ। मनुष्य होना माने पशु-पक्षी, देव—भोगयोनि, असुर-राक्षस-द्वेषयोनि—इनसे छुटकारा मिला। आप आजके दिन मनुष्य हुए। इस बातका उत्सव मनाते हैं।

क्यों भाई, व्याहकी वर्षगांठ भी मनाते हैं? खुशीकी बात है न! हजार स्त्रियोंकी ओर जाते थे, हजार पुरुषोंकी ओर जाते थे; भटक रहे थे। मन वरमाला लिये खड़ा था। आज एकके गलेमें वरमाला पड़ गयी, एकके हाथसे मिल गया, दूसरे लोग छूट गये। वैसा सम्बन्ध अब दूसरोंसे नहीं रहा। इसकी खुशी मनायी जाती है कि आजके दिन हम दूसरे स्त्री-पुरुषोंके आकर्षणसे छूट गये।

मुसलमान लोग मरनेका भी उत्सव मनाते हैं, क्योंकि वे 'मुसलमान' हो चुके हैं। मुसलमान होनेसे क्या होता है कि मुहम्मद साहब सिफारिश कर देते हैं और इस्लामको माननेवाला सिर्फ विहिश्तमें ही जाता है। तो मुसलमान होकर जो मरेगा, वह दोजखमें नहीं जायगा, बहिश्तमें जायेगा। इसलिए उनको मरनेकी भी खुशी होती है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हमारे साधुओंमें निर्वाण-महोत्सव मनाते हैं कि फिर उनको संसारमें नहीं आना पड़ेगा। अतः इस 'संन्यास' शब्दको ठीक-ठीक समझनेका प्रयास कीजिये।

आजकल जो ट्रस्ट बनते हैं उन्हें हिन्दी और संस्कृत भाषामें भी 'न्यास' बोलते हैं। 'न्यास' माने धरोहर—अपनी चीज नहीं, दूसरेकी चीज हमारे पास रखी हुई है, उस पर हमारा कोई स्वत्व नहीं है, ममत्व नहीं है। दूसरोंकी चीज, दूसरोंके लिए है। चीज न हमारी है, न हमारे लिए। उसको बोलते हैं 'न्यास'।

हमारा नाम पन्द्रह ट्रस्टोंमें हैं, और वह भी ज्यादा करके प्रेसिडेन्टके रूपमें। 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान ट्रस्ट', हृषीकेशमें 'स्वर्गाश्रम-ट्रस्ट' दोनोंका मैं प्रेसिडेन्ट हूँ। ऐसे बहुत हैं 'सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट', 'प्रेमपुरी-आश्रम-ट्रस्ट', वृन्दावनमें 'आनन्दवृन्दावन ट्रस्ट', 'लोकहित-प्रन्यास', 'जनता-जनार्दन सेवा ट्रस्ट'। एक दिल्लीमें है, एक बम्बईमें है। 'श्री उड़िया बाबा-ट्रस्ट'का मैं अधिपति हूँ, करीब तीस वर्षसे!

यह सब आपको इसलिए सुनाता हूँ कि 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान ट्रस्ट'की एक अतिथिशाला बनी हुई है। जयदयाल डालमिया उसके सेक्रेटरी हैं। उनके पुत्र विष्णु डालमिया भी उसमें हैं। रामनाथ गोयनका भी हैं, और अन्य सेठ लोग भी हैं। स्वर्गाश्रम-ट्रस्टमें श्रीबसन्तकुमार बिरला हैं। 'श्रीकृष्ण-जन्मस्थान'में लक्ष्मी निवास बिरला' हैं।

एक बार मेरे सामने हिसाब आया। जयदयाल डालमिया वहाँका काम करानेके लिए ठहरे थे। इस कामके लिए वे पचास लाख रुपये दे चुके हैं। परन्तु जब वे वहाँ ठहरते हैं, तो अपने ठहरनेका किराया कायदेसे भरते हैं। वे ही मालिक, उन्हींने बनवाया और वह अतिथिशाला बनानेमें चौदह-पन्द्रह लाख रुपये लगे। उनकी पत्नीने दिये। परन्तु जब उसमें ठहरते हैं, तो ट्रस्टको उसका किराया देते हैं। इसका नाम होता है 'न्यास'। हमारी तो आँख ही खुल गयी। तो हमने भी 'प्रेमपुरी आश्रम-ट्रस्ट'से कहा कि 'हम तुमसे एक पैसा नहीं लेंगे।' और भी किसी ट्रस्टसे नहीं लेते। आप लोगोंको शायद मालूम नहीं होगा, वृन्दावनमें हम जब रहते हैं, वह हमारे 'आनन्द-वृन्दावन ट्रस्ट'में या 'लोकहित-प्रन्यास'में नहीं है। वह तो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जे० के० वालोंने पहलेसे ही ट्रस्टसे बाहर हमारे लिए कमरे बनवा रखे हैं, उसमें मैं रहता हूँ। वह किसी ट्रस्टकी सम्पत्ति नहीं है। उसके मालिक वही हैं। मैं उसमें कोई २८-३० बरससे श्रीउड़िया बाबाजीके सामनेसे ही रहता हूँ।

'ट्रस्ट' माने वह दूसरोंकी सम्पदा है, और दूसरोंके लिए है। हम केवल उसकी देखभाल करते हैं कि उसमें कोई गड़बड़ न करे। उतना ही हमारा काम होता है। 'वेदनिकेतन' है, 'भारत साधुसमाज' है। एक ट्रस्ट औरैयामें है, उसमें तो हमारा 'वीटो' है। बिना हमारी अनुमतिके उसमें कुछ होता ही नहीं। कानपुरमें एक ट्रस्ट है, उसमें भी मैं हूँ।

मैं 'न्यास'की बात क्यों सुनाता हूँ? इसलिए कि 'न्यास' माने— हिन्दी और संस्कृत भाषामें ट्रस्टको 'न्यास' कहते हैं—ट्रस्टीको 'न्यासी' बोलते हैं। यह दूसरोंकी धरोहर है। अपने सुखके लिए नहीं, अपनी मनस्तृप्तिके लिए नहीं, लोकहितके लिए।

'संन्यासी' कौन होता है? जिसके 'न्यास'के साथ 'सम्' जुड़ गया। असलमें यह धरती किसकी है? ईश्वरकी। ईश्वरने सबके उपभोगके लिए इसको बनाया है। जो भूपति बनता है कि 'मैं धरतीका मालिक हूँ' वह बेईमान है।

यह पानी, सूर्य-चन्द्रमा भगवान्ने किसके लिए बनाया है? जिस माटीसे धरती बनी, उसी माटीसे शरीर बना। जैसे माटी सबके लिए है। पानी भी वैसे ही है, आग, हवा, आसमान भी वैसे ही हैं। भगवान् आपके पास कोई बिल नहीं भेजता। यदि आप ईमानदार हैं तो धरतीपर रहनेका किराया चुकावें। आप पानी पीनेका, गैसका, बिजलीका, रेडियोका आवाज सुननेका बिल देते हैं। वैसे यह सारी सम्पदा ईश्वरकी है आपकी नहीं है। आप इसको सँभाल कर सकते हैं, आप इसका उपयोग करते हैं कि इसी माटीके शरीरको अन्न खानेको मिले, पहननेको कपड़ा मिले, पीनेको पानी मिले, रोशनी और हवा मिले। बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलें।

'संन्यासी' माने क्या? उत्सव क्या? यह कि आजसे हम यह व्रत ग्रहण करते हैं। संन्यासी माने जीवन्मुक्त नहीं होता, ज्ञानी भी नहीं होता। अज्ञानी और बद्ध भी संन्यासी हो सकता है। परन्तु वह संन्यासी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं हो सकता जो किसी भूमिको अपनी मानता है, किसी वस्तुको अपनी मानता है। किसी व्यक्तिको अपना मानता है।

प्रदीप्त अन्तर्दृष्टिसे जो किसी स्थानको, किसी वस्तुको, किसी व्यक्तिको और किसी भूमिको अपनी नहीं मानता, उसका नाम संन्यासी है। संन्यासमें यही सङ्कल्प किया जाता है—'मैंने भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोकका संन्यास कर दिया। ये मेरे नहीं हैं—नाहं न मे। न मैं, न मेरा।

अभयं सर्वस्य भूतेभ्यो मत्तः अस्तु स्वाहा।

संसारके सब प्राणी मुझसे निर्भय हो जायें। संन्यासी अपने हाथसे दातुन न तोड़े, किसीके खेतमें कोई पशु चर रहा हो तो उसे हाँके नहीं, किसीके घरमें चोर चोरी कर रहा हो, तो उसे पकड़े नहीं, क्योंकि उसके लिए जैसे चोर मनुष्य, वैसे मालिक भी मनुष्य। दोनों एक ही सरीखे हैं। चीज तो दूसरेकी है, हम अपना-अपना मानकर बैठे हैं।

जीवन्मुक्ति दूसरी चीज है। वह ज्ञान होनेके बादका जीवन है। ज्ञान दूसरी चीज है, उसमें द्वैत बाधित होता है। जिसमें द्वैत मिथ्या हो जाता है, उसका नाम ज्ञान है। निर्भय, निर्द्वन्द्व जीवन है, उसका नाम जीवन्मुक्ति है।

अज्ञानी और बद्ध भी संन्यास ले सकता है। उसका पुनर्जन्म भी हो सकता है। वह नरक-स्वर्गमें भी जा सकता है। यदि वह बुरा काम करेगा तो उसके लिए भी नरकके दरवाजे खुले हैं और वह अच्छा काम करेगा तो वह भी स्वर्गमें जा सकता है। यदि वह निष्काम भगवान्की उपासना करेगा तो वह भी बैकुण्ठमें जा सकता है। लेकिन, संन्यासी माने, वह कभी नहीं हो सकता है, जो दुनियाकी किसी वस्तु-व्यक्ति या स्थानको अपनी समझता है। उसका नाम संन्यासी नहीं।

संन्यास लेते समय यह सङ्कल्प लिया जाता है कि—'आजतक हमने जितने बुरे काम किये हैं, उनका यह रहा प्रायश्चित्त। पितर! हमें माफ करो। आजके बाद हम तुम्हारा श्राद्ध कभी नहीं करेंगे। कर लेते हैं। देवताओं! तुम्हारे लिए हम हवन कर लेते हैं। क्षम्यताम्! माफ करो। अब आजके बाद हम देवपूजा नहीं करेंगे। पितरोंका श्राद्ध नहीं करेंगे। आजतक जो पाप किये हैं उनका हमने प्रायश्चित्त कर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिया। यह संन्यासमें सङ्कल्प होता है। मैंने सब कुछ छोड़ दिया। जैसे भगवान् रखेंगे, वैसे रहेंगे।' यह समर्पणका मन्त्र संन्यास लेते समय बोला जाता है।

आप अपने जन्मका तो उत्सव मनाते हैं। ब्याहका उत्सव तो मनाते ही हैं। जिस दिन ऐसा सङ्कल्प किया, ऐसा निश्चय किया, वह जीवनमें कितने बड़े उत्सवका दिन होता है। तुम नहीं मनाते हो, हम मनाते हैं। एक दिन जीवनमें ऐसा आया था, जब दोनों हाथ उठाकर और उत्तर दिशाकी ओर चले थे कि 'अब हम लौटकर संसारमें नहीं आवेंगे। गङ्गाजल पीयेंगे, पेड़के नीचे रहेंगे।'

किसी मण्डलीका ईश्वर बननेके लिए नहीं, प्रान्तेश्वर, राष्ट्रेश्वर, मण्डलेश्वर, मठेश्वर, पीठेश्वर बननेके लिए नहीं। पीढा सामने रख दिया, उसपर खड़ाऊँ रख दिया, उसका नाम हो गया पीठाधीश्वर। यह पाढा ही पीठ हो गया।

'न्यास' माने ईश्वरकी चीज, ईश्वरको समझकर ईश्वरपर छोड़ देनेके लिए। यहाँ रहे या वहाँ रहे। अब रहे कि तब रहे। रहे कि न रहे। इससे कोई मतलब नहीं है। उठा दिया दोनों हाथ।

एक बात और—यदि आपके मनमें सङ्कल्प होगा कि हम भी कभी सब कुछ त्यागकर संन्यासी हो जायँ, तो आज आप जो कुछ इकट्ठा करते हैं—संग्रहकी वह वृत्ति शिथिल पड़ जायगी। आप संन्यासी हों कि न हों, परन्तु अन्तमें छोड़ना है तो जीवनकालमें ही छोड़नेकी वृत्ति बनी रहेगी।

आप तो सोचते हैं कि मरनेके बाद हमारे बेटे, नाती-पोते सब बेवकूफ होंगे। उनके प्रारब्ध भी नहीं होगा, न उनके पास समझदारी होगी, न पौरुष होगा। उनके लिए हम कमायें, उनके लिए हम संग्रह करके रख चलें। मरनेकी बादकी बात सोचते हैं, जीवनकालकी बात नहीं सोचते। वह संन्यास जीवनके लिए बहुत उपयोगी है।

जिसके मनमें यह सङ्कल्प होंगे कि हम अन्तिम अवस्थामें सबका परित्याग करेंगे, तो जीवनकालमें भी उसमें आसक्ति नहीं रहेगी। संन्यास कोई मामूली वस्तु नहीं है। यह जीवनका एक सत्य है। विश्वात्माका एक नाम 'ब्रह्मचर्य' है। हिरण्यगर्भका एक नाम 'गृहस्थ' है। ईश्वरका 'वानप्रस्थ' और तुरीय तत्त्वका नाम 'संन्यास' है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह सब तात्त्विक पृष्ठभूमिमें है—शूद्र विश्व विराट् है, वैश्य हिरण्यगर्भ है, क्षत्रिय ईश्वर है, ब्राह्मण तुरीय है। आपका दिमाग ठीक है। इसीका नाम तो है! पाँव ढोनेका काम करता है; पेट संग्रहका, भोजन लेकर उसका रस चारों ओर बाँटनेका काम करता है। मच्छर आकर बैठ जाय तो हाथ उसे उड़ाकर, मारकर रक्षाका काम करता है। मस्तिष्क दिमागी काम करता है।

आपका दिमाग बिगड़ जाय, ठीक काम न करे तो? ब्राह्मण और क्षत्रिय भारतमें नहीं, मानवजातिमें यदि संन्यासी और क्षत्रिय, बुद्धिमान् और त्यागी—ये दोनों यदि नहीं रहेंगे, तो यह मानवता भी सुरक्षित नहीं रहेगी। आप लोग संन्यासके नामकी हँसी उड़ाते हैं, वह मनुष्य-जातिकी हँसी उड़ाते हैं, सम्पूर्ण विश्वकी हँसी उड़ाते हैं, सत्यकी हँसी उड़ाते हैं, तत्त्वकी हँसी उड़ाते हैं। आपके जीवनका यह आवश्यक और अनिवार्य, मुख्य और महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसके प्रति आपकी महत्त्व-बुद्धि होनी चाहिए।

तीन बातोंकी सभी जगह बड़ी आवश्यकता है—१. व्यवहारशुद्धि, २. नियमनिष्ठा और ३. प्रतिज्ञापालन। जिस सम्प्रदाय, जिस वर्ण, जिस आश्रम अथवा जिस व्यक्तिमें ये तीन बातें हों वह तो ठीक है, नहीं तो पतन हो जाता है। शास्त्र-विधिके ग्रहण और निषेधके त्यागका उपदेश करता है। यह भी बिना दृढ़ प्रतिज्ञा किये नहीं हो सकता। जप, नियम, ध्यान और पाठ भी प्रतिज्ञापूर्वक ही किये जा सकते हैं। अतः इन तीनमें ही सारे संसारका शास्त्र आजाता है। इसलिए इनका दृढ़तीपूर्वक पालन करना चाहिए।

—श्रीउड़िया बाबाजी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्व० पं० रामगुलाम द्विवेदी : एक संस्मरण

श्री ओम्प्रकाश द्विवेदी, एम० ए०

मेरे पूर्वज पं० रामगुलाम द्विवेदी प्रसिद्ध हरिभक्त एवं विख्यात रामायणी थे। सुप्रसिद्ध मानस मर्मज्ञ पं० रामकिंकर उपाध्यायने उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक अवसरपर ठीक ही कहा था कि पं० रामगुलामजी मानस-भवनके नींवके पत्थरके समान हैं, जिन्हें कोई नहीं देखता। लेकिन जिसपर भवनका पूरा आकार निर्मित होता है। यह भी जनश्रुति है कि 'वाल्मीकि तुलसी भये, तुलसी रामगुलाम।' सर्व प्रथम द्विवेदीजीने ही बड़े मनोयोग एवं परिश्रमसे गो० तुलसीदासके रामचरितमानसको क्षेपकोंके महाजालसे मुक्तकर उसे शुद्ध रूप प्रदान किया। आपने ही सर्वप्रथम तुलसीदासके बारह प्रमाणित ग्रन्थोंका उल्लेख किया है।

पं० रामगुलाम द्विवेदीके लेखोंके आधारपर डा० ग्रियर्सन तथा अन्य विद्वानोंके अनेक साहित्यिक गुत्थियोंको सुलझानेमें प्रेरणा प्राप्त की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं पं० सुधाकर द्विवेदीने इनका स्मरण साहित्यिक महारथियोंमें किया है। इन्हींकी लेखनीने गो० तुलसीदासके जीवनकी घटनाओंको निर्णायक स्थान दिया है। परन्तु दुर्भाग्यसे इनकी जीवनीके सम्बन्धमें जन साधारणको बहुत कम जानकारी है। क्योंकि जिस युगमें यह रहे उस युगमें आत्मचरित लिखनेकी परिस्थिति ही न थी। इस कारण यद्यपि इनके कुछ पुस्तकोंका यत्र-तत्र पता है फिर भी इनके जीवन-चरित्रका कहीं उल्लेख नहीं मिल रहा है। अतः आजके व्यासों, विद्वानोंका पुनीत कर्त्तव्य है कि उनके और उनकी रचनाओंके बारेमें अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करके जन साधारण तक उनकी रचनाओंका प्रकाश फैलायें।

लोक प्रसिद्धि है कि द्विवेदीजीको हनुमान्‌जीका इष्ट था। आपको हनुमान्‌जीका दर्शन भी हुआ था। आपकी मानस-कथन शैली अद्वितीय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थी। आपकी व्याख्यामें सदैव नवरस प्रवाहित होता था। एक बार कुम्भके अवसरपर प्रयागमें रींवानरेशने २२ दिन तक निम्न अर्द्धालीकी व्याख्या सुनी—

बन्दउँ राम नाम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।

व्याख्या नित्य नवीन ढङ्गसे होती थी। २३वें दिन रीवां नरेशने कहा 'मैं गृहस्थ हूँ, मेरे लिए इतना ही बहुत है।' क्षमा प्रार्थी होकर वापस हुए। इनके मेधावी श्रोताओंमें मुन्शी छक्कनलाल प्रधान थे। प्रतिदिन कथा इनके आनेपर प्रारम्भ होती थी।

मेरे पूज्य पिता स्व० समन्वयीजी, जो अधिवक्ताके साथ-साथ अच्छे लेखक और साहित्यप्रेमी थे, अपनी रचनाओंमें द्विवेदीजीकी शिष्य-परम्पराओंमें दो शाखाओंका उल्लेख किया है। एकमें चोपई बाबा, वन्दन पाठक, हरीदास भक्तमाली, छोटेलाल तथा काशीनाथ हुए हैं। दूसरेमें लाला छक्कनलाल, रामकुमारजी (काशी), देवी पलट, राजाराम पुरुषोत्तम तथा धर्मदासजी हैं। पूज्य पं० स्व० विजयानन्दजी त्रिपाठी ने स्व० पं० रामकुमारजीसे मानसका अध्ययन किया था।

श्री द्विवेदीजी केवल कथावाचक ही नहीं थे, बल्कि प्रौढ़ कवि भी थे। आपके लिखे हुए ग्रन्थोंमें सङ्कट-मोचन, प्रबन्ध रामायण, कवित्त रामायण, विनयनव पञ्चक तथा किष्किन्धाकाण्ड प्रसिद्ध हैं।

श्री द्विवेदीजी जीवनके अन्तिम समयमें महाराज काशीनरेश श्री ईश्वरीप्रसादनारायण सिंहके आश्रित एवं कृपापात्र रहे। काशीराजमें सदैवसे विद्वानोंका समादर तथा सत्कार करनेकी परम्परा रही है जो अब भी अक्षुण्ण बनी हुई है। द्विवेदीजीकी रचनाएँ हस्तलिखित मानस गुटिका, सटीक रामायण तथा गो० तुलसीदासके द्वादश शुद्ध ग्रन्थ पाठ आदि सरस्वती भण्डार, रामनगर दुर्गमें सुरक्षित हैं। शोधकर्त्ताओंको इससे लाभ उठाना चाहिए।

पं० रामगुलाम द्विवेदीसे पूर्व लोकभाषामें लिखित रामचरित मानसको सार्वजनिक स्थानमें कथाका रूप प्राप्त नहीं था। इन्होंने मानसका प्रचार जनसाधारणमें किया और कथावाचकोंके पीठको विन्ध्याचल क्षेत्रमें स्थित मीरजापुरमें स्थापित किया। यह क्षेत्र शक्ति-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पीठके नामसे प्रसिद्ध है। इस शक्तिपीठसे ही रामायणकी कथाका प्रचार सर्वत्र हुआ है।

अतः ऐसे अनन्य रामानुरागी हनुमान् भक्तका पावन स्मरण हमारे लिए प्रेरणास्रोत बनेगा। ऐसा मुझे विश्वास है। उनकी एक कृति हनुमानाष्टक भक्त हितार्थ, जनकल्याणार्थ प्रस्तुत है। जिसका पाठ करनेसे भक्तका मनोरथ सिद्ध होता रहा है।

हनुमानाष्टक

काहि सुनाइय दीनता, परिहरि पवन कुमार।
जानत जन जियकी दसा, मृदुचित कृपा अगार॥

उदधि उलंघ्यो जेहि सिंहिका उदर फारि,
लंकिनी ससंक कीन्हीं जानकी निहारी है।
वाटिका उजारि जातुधान धारि मर्दि मारि,
अच्छ कच्छ पावक प्रताप तम हारी है॥
दुर्जन दुराय जमराजको बसाय कहा,
जौ पै रघुराज दूत कुमक तिहारी है।
रुद्र अवतारी सो गुलाम राम मोदकारी,
केसरी किसोरको भरोसो सदा भारी है॥१॥

सुंडा दण्ड सरिस प्रचण्ड दोर दण्ड दृढ़,
विक्रम अखण्ड मारतण्डके गहैया हूँ।
बुद्धिके अगार बल पारावार कीस ईस,
सज्जन सुखद औ सुकंठके सहैया हूँ॥
तेरो हाँक सुनत अतंक होत लंकपुर,
औ अनय कदन कोटि कलुष दहैया हूँ।
बदत गुलाम राम सीझे सब राम काम,
बाधाके हरैया हरि सुजस कहैया हूँ॥२॥

देवगन सोक हर असुर ससोक कर,
कीस कुल भूषन सुजस तेरो गाइये।
अंजनी कुमारके समान अंजनी कुमार,
बल बुद्धि वेगि उपमा न कहूँ पाइये॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कहा करै कुजन करालता गुलाम राम,
जो पै दीनबन्धु दया दृष्टि दरसाइये।
सूर सिरताज कपिराय रघुराज दूत,
सेवकके काजको न गहरु लगाइये ॥३॥

वीर व्रातजात विरदावली विदित विश्व,
वेदन बखानी है बड़ाई बार बार ही।
सीतापति सोदर समेत सानुकूल सदा,
सुजन समाज सबै सुजस उचारहीं ॥

सद्‌गुन सिन्धु जे समर्थ सूरताको सींव,
सुमिरे सहाय करु सेवक न हारहीं।
सुक्ख करु श्रेय करु सांकरे सँभार करु,
रटत गुलाम राम हरे तेरे द्वारहीं ॥४॥

जानकी सकाज सिन्धु कूदत न लागी बेर,
लागी है न बेर नेकु सिंहिका कदन मों।
लंकिनीके मुष्टिका प्रहारत न लागी बेर,
पैठत न लागी बेर दक्षजा वदन मों ॥

कालनेमि मारत न लागी बेर कीसनाथ,
द्रोनाचल ल्यायो है उखारि एक छन मों।
मेरे दुःख मेटन गुलाम राम देर भई,
केसरी किसोर तूँ विचारे कहा मन मों ॥५॥

बुद्धि बलहीन दीन दूबरो विपति वस,
लोक वेद विमुख भयो न काहू कामको।
कपटी कुचाली कूर कलही कलंकी क्रोधी,
कलुष कदम्ब कौर करत हरामको ॥

वारे ते विदेस वस्यो देखि दसा देस हँस्यो,
पेट भरिबेके काज कहौं जस रामको।
तउ न गुलाब राम सकत विलोकि कलि,
हाय हनुमान मोसो दूसरो निकामको ॥६॥

राग रोग दुखित मलीन मन मोह वस,
कीनी बहु कीन्हीं पर दोषहू कथन हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनुदिन वपुष बेकारको अगार अहौं,
किये जेते पाप तेतै रोमहूँ न तन है।।
भूल्यो सब भाँति ते गुलाम राम कहा कहौं,
एक ही अधार आँजनेयको चरन है।
तारे गनि जाहिं वरु नीरकन गनि जाहिं,
रेनु गनि जाहि मेरे अघ अनगन हैं।।७।।
वीर हनुमान बात जानत जहान यह,
आपकी विहाय गति मेरे है न आनको।
रावरो कहावों रावरोई गुनगावों दास,
रावरो प्रसन्नता निदान निखानको।।
कलिको कहर देखि हहरि डेरान्यौ उर,
ताते मैं ढिढाई चूक छमब अजानको।
आजुलों निबाही नाथ आगेको तिहारे हाथ,
देखिये गुलाम राम दृष्टि सुखदानकी।।८।।

इति श्री द्विवेदी रामगुलाम पंडित कृत श्रीहनुमानाष्टक सम्पूर्ण। शुभमस्तु सम्वत् १९३८ कार्तिक कृष्ण १३ गुरुवार।

कवित्त:

यह हनुमंतकी कवित्त आठ पाठकरि,
अर्थ धर्म काम मोक्ष सहजहिं पाइये।
अविरल भगति जुगलको जगैगी जग,
मंगल स्वरूप यह हिय जो वसाइये।।
याहीकी रटन करि याहीके चरन परि,
याहीकी सरन जौ अनन्य होइ आइये।
तो पै ब्रजचन्द जू निरन्तर नवल नित,
कपिकुल चन्द कृपा पात्र कह पाइये।।

यह हनुमत अष्टक सुखद कृत श्री रामगुलाम।
पढ़ै जो श्रद्धा प्रेमसे पावै सब मन काम।।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्लज्जता बनाम सभ्यता

फरहत क़मर एम० ए०

यदि मैं कहूँ कि आधुनिक सभ्यतासे भगवान् बचाये रखें तो शायद आपको मेरे मानसिक स्वास्थ्य-पर सन्देह होने लगे। क्योंकि आधुनिक सभ्यता तो मानवकी श्रेष्ठ चेष्टाओंको परम सीमा है। आधुनिक सभ्यताका प्रत्येक पहलू प्रशंसनीय है—आवास, वस्त्र, सफाई, चिकित्सा, शिक्षा, उन्नति इत्यादि !

परन्तु क्या आपने इन सबके बारेमें गम्भीरतापूर्वक सोचा है ? निकट भूतकालमें जब लड़का जवान हो जाता था तो उसकी जवानीकी चिन्ता उससे अधिक उसके माता पिताको होती थी और एक अनदेखी अनजानी युवतीसे उसका विवाह कर दिया जाता था। दोनों एक दूसरेको पसन्द करनेपर विवश होते थे और साधारणतः यही विवशता समयके साथ परस्पर प्रेममें बदल जाती थी। आज विवाहसे पहले कोर्टशिप तथा डेटिंग द्वारा युवा-युवती एक दूसरेको भली-भाँति समझने परखनेका प्रयत्न करते हैं, विशेषज्ञोंसे सलाह ली जाती है, एजेन्सियोंकी सेवाओंका लाभ उठाया जाता है और कम्प्यूटर तककी सहायता ली जाती है। फिर भी वैवाहिक असफलताकी गति सीमा पार कर गयी है। अमरीकामें हर तीनमें-से एक और योरोपमें हर पाँचमें-से एक विवाह गिनतीके महीनोंमें ही छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कारण ? वहाँ विवाहको मन बहलानेका एक खेल समझा जाता है। एककी दूसरेमें दिलचस्पी समाप्त हुई कि विवाह बन्धन कच्चे धागेकी भाँति टूटा।

आधुनिक नीतिमें यह बात प्रधान है कि युवक युवतियोंके मिलने जुलनेपर प्रतिबन्ध नहीं लगाये जाते। कहा जाता है कि तूफानको रोका जाये तो और तीव्र होता है, मनोभावोंको दबाया जाये तो मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं। तर्क जानदार लगता है, परन्तु इसका परिणाम ? इसका परिणाम यह हुआ है कि आजके युवक विवाहपूर्व यौन सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं पाते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक सर्वेक्षणके अनुसार इग्लैंडमें ७५ प्रतिशत लड़कों तथा ६३ प्रतिशत लड़कियोंने, नार्वेमें ६७ प्रतिशत तथा ५४ प्रतिशतने, जर्मनीमें ५५ प्रतिशत तथा ६० प्रतिशत और फ्रान्समें ७७ प्रतिशत एवं ७१ प्रतिशतने विवाहसे पहले ही यौन सम्बन्धका अनुभव प्राप्त कर लिया था।

हमारे अपने देशमें इस प्रकारके सर्वेक्षण तो नहीं किये जाते परन्तु यदि किसी प्रकार आँकड़े प्राप्त हो सकें तो पता चलेगा कि भारतकी युवा पीढ़ी भी इस सम्बन्धमें काफी 'सभ्य' हो चुकी है।

हमारे पूर्वजोंके लिए यह मर जाने या मार डालनेकी बात थी कि उनकी कुँआरी बेटी माँ बन जाये। परन्तु आज अमरीकामें ६० प्रतिशत, कनेडामें ५८ प्रतिशत, डैनमार्कमें ५० प्रतिशत और इंग्लैण्डमें ३३ प्रतिशत युवतियाँ कुँआरी माताएँ बनकर लाखों अवैध बच्चोंको जन्म देती हैं या गर्भपात करा डालती हैं। वहाँका समाज इन युवतियों और इस प्रकारके बच्चोंको स्वीकार करता है और इस हद तक कि कुँआरी माँको भी प्रसूति का अवकाश मिलता है। अमरीका (यू० एस० ए०)में हर वर्ष लगभग दस लाख व्यक्ति यौन सम्बन्धी बीमारियोंका इलाज कराते हैं। एक युवतीसे जब पूछा गया कि उसको यह भयानक रोग कहाँसे लगा तो उसने कहा, 'कह नहीं सकती। पिछले छः मासमें लगभग ५० पुरुषोंसे मेरा सम्बन्ध रहा है।'

आधुनिक सभ्यताके पक्षमें एक यह बात कही जाती है कि इसने मानव जीवनसे परिश्रम कम करके उसके अवकाशको बढ़ाया है और मनोरञ्जनके नित नये साधन उपलब्ध कराये हैं—शराब, गाँजा, नशीले पदार्थ, जुआ, नाच, हा हू—परन्तु इससे मनुष्यकी मान्सपेशियाँ सख्त हुई हैं और मानसिक विकार बढ़ गये हैं? पाश्चात्य देशोंमें आधे रोगी मानसिक रोगी होते हैं। आठ लाख अमरीकी तथा दो लाख अंग्रेज हर वर्ष किसी न किसी रूपमें मानसिक या वैज्ञानिक चिकित्सा करते हैं। अमरीकामें हर १३ व्यक्तियोंमें-से एक किसी न किसी सीमा तक मानसिक रूपसे अस्वस्थ है। (प्लेन ट्रूथ)

कहा जाता है कि आधुनिक चिकित्सा प्रणाली वास्तवमें प्रभावशाली तथा उत्तम है। मेरी समझमें नहीं आता कि जिस चिकित्सामें नये-नये रोग जन्म लें वह उत्तम कैसे कहला सकती है। पहले समयमें एक ओर रोग कम होते थे दूसरी ओर उनका पूर्ण निदान कर दिया जाता था। आज पैनिसिलीन, सल्फा, एन्टीबायोटिक तथा नाना प्रकारकी तीव्र औषधियोंकी भरमार है, जो एक रोगका शीघ्र दमन कर देती हैं परन्तु

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

इसको क्या किया जाये कि इन्हीं 'औषधियों'की प्रतिक्रियाके रूपमें मानव शरीरमें कुछ अन्य जटिल विकार उत्पन्न हो जाते हैं। चिकित्सा विज्ञानकी सिरतोड़ कोशिशोंके बावजूद नये-नये रोग फैलते जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक सभ्यता-के अनेक खतरनाक तथा घातक पहलू हैं। औद्योगिक विकासके साथ बड़े-बड़े शहरों तथा कारखानोंने जन्म लिया है। परन्तु शहरोंमें न साँस लेनेके लिए शुद्ध वायु है, न पीनेके लिए स्वच्छ निर्मल जल, न रहनेके लिए उचित स्थान है न चलनेके लिए! कारखानों-के धुएँ तथा उनसे निकलनेवाली रासायनिक गन्दगीने दूषण उत्पन्न कर दिया है और इस दूषणमें सहायक होता है ट्रैफिकका धुआँ! जहाँतक शोर और कोलाहलका सम्बन्ध है, वह इतना बढ़ चुका है कि मनुष्यके मस्तिष्क तथा मांसपेशियोंके लिए खुला खतरा है।

वायु दूषण!

जल दूषण!!

वातावरणमें दूषण!!!

एक ओर समुद्रोंमें विषैले पदार्थ हैं तो दूसरी ओर वातावरणमें रेडियो-धर्मी (रेडियो ऐक्टीव) धूलि! आपके मनपसन्द साबुन तथा नाना प्रकारके कीटाणुनाशक पदार्थ भी, जैसा आप सोचते हैं, हानिरहित नहीं हैं। घरकी नालियोंसे नदियोंमें और फिर समुद्रमें इनके हानिकारक तत्त्व पहुँच जाते हैं। कुछ वायुमण्डलमें फैल जाते हैं। दूर स्थित उत्तरी ध्रुवके पक्षियोंपर भी विषैले वायुमण्डलका प्रभाव पड़ा है और अफ्रीकाके वनोंपर भी।

खेतीमें उपज बढ़ानेके लिए तरह-तरहके खाद प्रयोग किये जाते हैं और पौधोंपर कीटाणुनाशक पदार्थ छिड़के जाते हैं। आप सोचते होंगे यह सब कुछ तो बहुत अच्छा है परन्तु नहीं। इन वस्तुओंके उपयोगसे भूमि-की उपजशक्ति क्षीण होती जा रही है।

संसारमें वितरण प्रणाली अनुचित है। कुछ देश इतने धनी हैं कि उनके साधनोंका कुछ अन्त नहीं, दूसरी ओर आज भी करोड़ों लोग अपने पेटका नर्क कन्दमूल तथा रद्दी भोजनसे भरते हैं। आज भी जाड़ोंमें लोग नङ्गे पैर तथा नङ्गे शरीर रहनेपर मजबूर हैं और आज भी करोड़ों व्यक्ति अपने रोगों तथा घावोंको अपने साथ लिये मर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त धोखेबाजी तथा स्वार्थ भरी राजनीति!

युद्धके मँडराते बादल!

घृणा, ईर्ष्या, घुटन, व्याकुलता।

मानव अस्तित्वके लिए नयी-नयी चुनौतियाँ।

यह सब क्या तमाशा है? यह सब क्यों है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्या इसीका नाम है सभ्यता ?

यह तो कोई सभ्यता न हुई, जिसमें मनुष्य चैनके साथ जी भी न सके। यह तो एक जाल है जिसमें फँसकर मानव फड़फड़ा रहा है और जितना फड़फड़ाता है, उतना ही जाल उसके चारों ओर और सिमटता जाता है।

इस दयनीय स्थितिका सीधा-सादा कारण यह है कि मनुष्यने भगवान्को भूलकर अपने बुद्धिबलपर पूरा भरोसा करना शुरू कर दिया है। वह यह भूल बैठा कि ब्रह्माण्डके अनन्त असीम फैलावमें मानव शून्यसे अधिक नहीं और विधाताके रहस्योंको समझनेके लिए मानव बुद्धि पर्याप्त नहीं।

फिर भी मनुष्य अहम्से अकड़ रहा है और प्रकृतिको चुनौती दे रहा है। इसके विपरीत यह अधिक अच्छा होगा कि मानव अपनी बुद्धिको प्रकृतिके उद्देश्योंके अधीन रहकर कार्य करे प्रकृतिके विरुद्ध न जाये।

प्रकृतिके उद्देश्य क्या हैं? मनुष्यकी सीमाएँ कौन-सी हैं? इसका श्रेष्ठ उत्तर धर्म देता है।

केवल धर्मपालन ही संसारकी समस्याओंका समाधान कर सकता है।

मुलाकात

बगदादमें एक व्यापारीने अपने नौकरको कुछ चीज़ें लानेके लिए बाजार भेजा। नौकर कुछ देरमें भागा हुआ वापस आया और काँपते हुए बोला—'मालिक, बाजारमें एक औरत मुझसे टकराकर आगे निकल गयी। जब मैं उसे देखनेको मुड़ा, तो क्या देखता हूँ कि वह मौत है। तभी उसने मुझे धमकी दी।······सो, अब मेहरबानी करके मुझे अपना घोड़ा दीजिए, ताकि मैं उसपर सवार होकर यहाँसे निकल जाऊँ और जल्दीसे जल्दी समरा पहुँच जाऊँ, जहाँ मौत मुझे ढूँढ नहीं सकेगी।'

व्यापारीने उसे घोड़ा दे दिया। नौकर उसपर सवार होकर समराकी ओर रवाना हो गया।

व्यापारी शामको बाजारमें गया तो उसने मौतको उसी औरतके रूपमें देखा। उसने सामने जाकर कहा—'तुमने मेरे नौकरको आज सुबह धमकी क्यों दी थी?'

'वह धमकी नहीं थी,' मौतने कहा—'मैंने तो उसे जरा-सा चौंकाया था। उसे बगदादमें देखकर मुझे हैरानी हुई थी, क्योंकि आज रात मैं उसे समरामें मिलनेवाली हूँ।'

—सॉमरसेट मॉम, 'नवनीत'से

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रकृतिसे स्वास्थ्यका सम्बन्ध

स्व० श्री रामकुमार भुवालका
(भू० पू० संसद सदस्य)

मेरी उम्र जब ८-९ वर्षकी थी तभीसे मैं बराबर कुछ न कुछ शिकायतका शिकार बना रहता था। कभी सिर दर्द, कभी खूनकी खराबी, बहुत-सी दवायें ली, कविराजी, एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक, इसके अलावा और कई इलाज कराये गये, पर स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। कुछ वर्षोंके बाद जब प्राकृतिक चिकित्साकी बात सामने आयी और व्यायाम तथा भोजनमें सुधार हुआ तभीसे बराबर स्वास्थ्य ठीकसे रहने लगा।

इसलिए पिछले ७०-७५ वर्षके अनुभवसे यह स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार पाठकोंके सामने उपस्थित किया है। इसके पढ़नेसे समझनेवाले अगर ठीक समझकर कार्यमें लायेंगे तो निश्चय ही स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा तथा मन भी खुश रहेगा।

इस युगमें जिस तेजीसे चिकित्सकों और उनके प्रतिभा-प्रयाससे नयी-नयी ईजादोंसे नयी-नयी दवाओंकी बाढ़ आयी है, उसे लक्ष्य करनेके बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि इन दोनों प्रकारकी बाढ़ोंसे भी अधिक बाढ़ आयी है रोगों, रोगोंके नामों, नाना परेशानियों और जीवनके प्रति निराशाके भावोंमें। सचमुच हमारा आजका जीवन अत्यन्त संशयशील हो उठा है।

अतएव साफ जाहिर है कि चिकित्सक (डाक्टर, वैद्य, हकीमादि) और उनकी दवाइयाँ किसी भी बीमारीके सही इलाज नहीं हैं। अगर इनसे कोई रोग हटा भी, तो तुरन्त ही या कुछ आगे-पीछे कोई नया मर्ज मरीजको धर दबोचता है। तब चिन्ता होती है, निरोग होनेके लिए सही उपाय ढूंढ़नेकी। प्रत्येक स्वास्थ्य-चिन्तक इसी खोजमें व्यस्त है।

किन्तु, हम अनुभवसे देखते हैं कि अगर मनको सन्तुलित रखा जाय, धीरजसे काम लिया जाय और प्रकृति के अनुशासनमें रहा जाय, तो सुख-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सुविधा, शान्ति और पूर्ण उन्नतिकी राह सहज ही मिल जाय।

दैहिक हो या मानसिक····दोनों प्रकारकी····निरोगता प्रकृतिके ठीक-ठीक अनुशासनमें रहनेसे ही प्राप्त होती है। आज हम प्रकृतिको अमान्य करके सामाजिक, आर्थिक और दैहिक स्वास्थ्य-लाभका झूठा विश्वास पोषण कर रहे हैं। हम जीवनकी प्रत्येक दिशामें उन्नतिके लिए उतावले हुए हैं। हम भूले जा रहे हैं कि संसार हमें गिराना चाहता है। वह हमें कमजोर बनाये रखकर ही अपना स्वार्थ साध सकता है। इसलिए वह प्रलोभनोंकी ऐसी भूमिका रचता है, जिसमें हम सहज ही फँस जाते हैं। ऐसा वातावरण हमें प्रकृतिके अनुशासनसे बाहर खींच लेते हैं। हम बहक जाते हैं और तन, मन, धन तीनोंको बर्बाद करके दुःखोंको भोगनेको विवश होते हैं।

मनुष्य कमजोर होनेपर ही दूसरोंका शिकार बनता है। स्वार्थी दुनिया जैसे चाहती है, उसे नचाती है। वह दुःख भोगता है, रोता है, किन्तु अपने निस्तारके लिए न साहस पाता है, न उपाय। स्वास्थ्यकी दयनीय दशाका ऐसा ही परिणाम होता है।

रसियामें एक किसान जिसकी उम्र १३० वर्षकी थी, मास्कोमें ३० माइल अपने गाँवसे पैदल चलकर आया—अपने स्वास्थ्यकी परीक्षा करानेके लिए जब मास्कोके बड़े डाक्टरने अच्छी तरहसे उसकी परीक्षा कर बतलाया—आपके स्वास्थ्यमें किसी तत्त्वकी कमी नजर नहीं आती आप सब तत्त्वसे स्वस्थ हैं।

फिर डाक्टरने प्रश्न किया, आपका स्वास्थ्य ऐसा रखनेके लिए आपको कौन-सा प्रयोग करना पड़ता है? उस किसानने उत्तर दिया—डाक्टर महोदय आप मेरा स्वास्थ्य देखकर भी न पहचान सके! मैं किसान हूँ। खेतमें सारे दिन काम करता हूँ। मेरे बहुत-से बेटे, पोते तथा उसके भी बेटे हैं। मैंने ३० मीइल पैदल चलकर यहाँ मास्को आया हूँ। इसीसे मेरा स्वास्थ्य ठीकसे चल रहा है।

महाभारतमें एक श्लोक है उसका अर्थ है—पहला सुख निरोगी काया।

बिमारियाँ कोई बाहरसे नहीं आती, अपने निजके अज्ञानके कारण होती हैं। आप बाजारमें अपने घरका पैसा खर्चकर बिमारी खरीदते हैं केवल जीभके स्वादके लिए। बाजारमें गये जैसी तैसी चीजें खरीदकर खानेवाले लोग ही ज्यादातर बिमारियाँ भोगते हैं। घरका पैसा खर्च करते हैं, साथ में बिमारी भी लेकर आते हैं। घरसे भी हमेशा स्वादको स्थान देकर, जो चीजें बनवाकर खाते हैं जैसे ही स्वाद जीभको लगेगा जीभ और ज्यादी माँग करेगी उसी चीजको खानेकी उसका भी परिणाम भोगना पड़ता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्राकृतिक चिकित्साका यह महत्त्व-पूर्ण साधारण परिचय है। इसीलिए प्रकृतिकी महिमा भूलना ठीक नहीं।

प्रकृतिके मूल सिद्धान्तों और आदेशोंके प्रति जिनका ध्यान है, वे वहुत ही कम रोग-ग्रस्त होते हैं। रोग तो उन्हें धर दवाता है जो प्रकृति-को अमान्य करते हैं। जिनके पास अपार धन है, वे सिर-दर्द होते ही कोई वड़ा डाक्टर खोजने लगते हैं और डाक्टर इस तरहके अति साधारण रोगके सहारे उस धनी घरमें प्रविष्ट होकर उसके धन और स्वास्थ्यका श्राद्ध करनेका पूरा मौका पा जाता है।

अतएव, स्वस्थ रहने के लिए ही मैं अपना अनुभव जाहिर करता हूँ। मेरा तजुर्बा है कि रोजाना व्यायाम करनेसे, इतना व्यायाम करनेसे, कि देह सहन कर ले, तन्दुरुस्त रहा जा सकता है। यह स्वस्थ रहनेकी पहली शर्त है। दूसरी शर्त है, सरलतासे हजम होनेवाला सीधा-सादा भोजन। तीसरी शर्त है, भरपूर नींद। अर्थात् व्यायाम, खान-पान और नींदको पूरी-पूरी सही आदत वन जाय, तो स्वस्थ रहना आसान हो जाये।

इसीलिए सूर्योदयसे पहले विस्तरा छोड़ना और शौच-स्नानादि नित्यकर्म नियमसे नियत समयपर प्रतिदिन पूरा करना अत्यन्त आवश्यक और लाभ-कारी है। यह भी स्मरण रहे कि व्यायामके समय नाक-कान और आँखे साफ कपड़ेसे ठीक-ठीक साफ कर ले, ताकि रोज-रोजका मैल साफ हो जाय। यदि इस तरह अंग-प्रत्यंग सदा साफ रहे तो जुकाम आदि विकार होंगे ही नहीं।

नियमित शारीरिक मेहनतकी अत्यन्त जरूरत है। मेहनतकी वदौलत ही हमारे मजदूर और किसान वन्धु सदा स्वस्थ रहते हैं—वे जरा-जरामें रोगग्रस्त नहीं होते। अतएव, यह निर्विवाद सिद्ध है कि सदा सुखी, कर्मी और दीर्घजोवी होने के लिए हमें प्रकृतिके अनुशासनमें ऊपरके कतिपय नियम पालन करना ही चाहिए। जीवन और समाजकी शृंखला, सुख-शान्ति, मनुष्यत्वका विकास और जीवनकी पूर्णता प्रकृतिके अनुशासनमें ही सम्भव है। प्रेरणा उत्साह और प्रगतिकी यही कुञ्जी है।

इसीलिए आवश्यक है कि हम प्राकृतिक अनुसरण करें और जीवन-को सुखी वनायें। स्वास्थ्य ही हमारा मनोरथ सिद्ध कर सकता है। इसी के लिए हमें प्राकृतिक नियमोंका ठीक-ठीक पालन करना है। मनुष्य होकर यदि आप प्रकृतिकी उपेक्षा करेंगे तो निश्चय ही वह असन्तुष्ट होगी और कठोर दण्ड देगी। उनके दण्डके अनेक रूप हैं। जिन्हें दैहिक और मानसिक रोग कहा जाता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आश्चर्य तो यह है कि प्रकृतिकी अनन्त सृष्टिमें मानव ही सर्वश्रेष्ठ है। वह इसलिए श्रेष्ठ है कि उसके विवेकके कारण ही वह अनन्त सृष्टिसे नैमित्तिक ज्ञान संग्रह करके धन्य है। दुःख है, इस समय उसका यह चेतन मन अवचेतन हो रहा है, अन्यथा प्रकृतिके अनुशासनमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंसे वह बहुत कुछ सीखता। एक उदाहरण देखिये। पक्षीसे आप परिचित ही हैं। वह भूख लगनेपर ही आहार करता है, समय पर ही नींद लेता है और गजरदम उठता है, चहचहाता है, मानों प्रकृतिकी वन्दना करता है। फिर शामको दिन भरके अपनी रोजी कर्मसे छुट्टी पाकर घोंसले-को लौटता है। फिर चहचहाकर प्रकृतिकी स्तुति करके सुख की नींद सो जाता है। मैं पाठकोंसे निवेदन करूँगा कि प्रकृतिके शासनमें रहनेवाले पक्षीके ज्ञानकी महिमा समझें और रहस्य का उदघाटन करें। पक्षी कब कहाँ प्राण त्यागता है—यह रहस्य न गाँववाले जानते हैं, न नगरके सभ्य। किन्तु समयपर जीवन-लीला समाप्त वे करते ही हैं। स्वेच्छासे, प्राण-विसर्जनका वे स्थान चुनते हैं। यह स्थान वे कैसे चुनते हैं और कैसे अन्त समयमें गाँव-नगरसे कहीं दूर अदृश्य हो जाते हैं।

बात आश्चर्यकी ही है। किन्तु ध्यान देते ही आप रहस्य समझ जायेंगे। असल बात यह है कि तमाम जीवन प्रकृतिका शासन मानकर जीवन बितानेके दृढ़-संकल्पसे, उन्हें अपने अन्तका यथार्थ बोध हो जाता है और यह बोध उन्हें मृत्युके इच्छित स्थान-चयनका स्पष्ट संकेत देता है। यदि ज्ञानवान् मनुष्य प्रकृतिको मान्यता दे, विश्वास और श्रद्धासे उसके अनुशासन-में रहे तो उसे भी पक्षियोंकी तरह ही अपने अन्तका सही पता लग जाय।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रकृतिकी अनन्त-सृष्टिसे उपस्थित करके मानव-मन को उसकी महिमा और शक्तिका परिचय देकर प्रकृतिके मूक संकेतोंके पालन करनेकी अनिवार्यता दिखायी जा सकती है। मनुष्यको अपने ऊपर लज्जित होना चाहिए कि प्रकृतिकी सर्वश्रेष्ठ और प्रिय सन्तान होकर भी वह पशु-पक्षियोंसे भी कहीं अधिक गया-गुजरा बना जा रहा है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अखिल ब्रह्माण्डमें जीवन

भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

मनुष्य प्रकृतिके विलक्षण विकासक्रमकी अन्तिम कड़ी है। वह अब तक विकसित प्राणियोंमें सबसे बुद्धिमान् है। उसमें 'कार्य' और 'कारण'-में सम्बन्ध खोजनेकी चाह और क्षमता है; उसमें प्रत्येक प्राकृतिक घटनाके बारेमें अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करनेकी सहज जिज्ञासा है। इसी जिज्ञासाने हमारे किसी पूर्वजमें टिमटिमाते तारोंको देखकर उन्हें जीवनसे पूर्ण विश्व समझनेकी कल्पनाको जन्म दिया। धर्म-ग्रन्थोंने, जो कुछ हद तक अन्धविश्वासपूर्ण मान्यताओंपर आधारित हैं, खगोलीय पिण्डों, विशेषरूपसे ग्रहोंको, देवी-देवता बना दिया। फलित ज्योतिषियोंके अनुसार ये आज भी प्रत्येक व्यक्तिके जीवनको अत्यधिक प्रभावित करते हुए बताये जाते हैं। पर दूसरी ओर वैज्ञानिक-जिज्ञासासे पूर्ण पूर्वजोंने इनकी सूर्यके इर्द-गिर्द परिक्रमा करनेकी गति, अपनी धुरीपर घूमनेकी अवधि तथा अन्य खगोलीय पिण्डोंसे उनके सम्बन्धके बारेमें अवलोकनके आधारपर ऐसे निष्कर्ष निकाले जो एक हद तक आज भी सही है। 'पर आकाशके असंख्य पिण्डोंमें-से कुछमें मनुष्यसे भी अधिक बुद्धिमान् प्राणी अवश्य विचरण करते होंगे' यह मान्यता केवल प्राचीन दार्शनिकोंकी ही नहीं आजके अन्तरिक्ष वैज्ञानिकोंकी भी है। पिछली शताब्दीके वैज्ञानिकोंकी तुलनामें—जब मनुष्यकी अन्तरिक्ष यात्राएँ स्वप्न थीं—आज खगोलशास्त्रीय अन्तरिक्षमें जीवधारियोंकी उपस्थितिको अधिक यथार्थ मानते हैं। अन्तरिक्षके तथाकथित जीवोंका अध्ययन करनेके लिए ही पिछले दशकमें विज्ञानकी एक नयी शाखा 'अन्तरिक्ष जीवशास्त्र' (एक्सोबायोलोजी)का जन्म हुआ।

पहला महान् कदम :

अन्तरिक्षके इन तथाकथित जीवधारियोंकी खोजमें पहला व्यावहारिक महान् कदम उठाया गया, सितम्बर १९७१ में। उस समय

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सोवियत अरमानियामें स्थित ब्यूरोकान ताराभौतिक वेधशालामें सोवियत और अमेरिकी विज्ञान अकादमियोंके संयुक्त तत्त्वावधानमें वैज्ञानिकोंका एक सम्मेलन हुआ। उसमें दो नोबल पुरस्कार विजेता भी उपस्थित थे। वहाँ इस प्रश्नपर कि 'क्या वैज्ञानिकोंको दूसरे खगोलीय पिण्डोंसे आनेवाले संकेतोंको अकूटित करनेका प्रयास करना चाहिए ?' जोरदार बहस हुई और अन्तमें सब वैज्ञानिकोंने इस प्रश्नपर अनुसन्धान करनेके विषयमें एक स्वरसे सहमति प्रकट की।

यद्यपि प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्रियोंने ईसाके जन्मसे शताब्दियों पूर्व पृथिवीके स्थानपर सूर्यको ब्रह्माण्डका केन्द्र माननेमें प्राथमिकता देनेके सुझाव प्रस्तुत किये थे, पर कुछ कारणोंसे उनके सुझावोंको उपयुक्त प्रोत्साहन और प्रसार नहीं मिल पाया और आज भी अनेक खगोलशास्त्री उन्हें उचित मान्यता नहीं देते।

पर सोलहवीं शताब्दीमें पोलैण्डके पादरी-खगोलशास्त्री कापरनिकसकी खोजोंके निष्कर्षोंका, तीव्रतम धार्मिक विरोधोंके बावजूद, उचित प्रचार हुआ। उसने भी तत्कालीन प्रचलित मान्यताओंके विपरीत पृथिवीको नहीं वरन् सूर्यको ब्रह्माण्डका केन्द्र बताया। उसके विचारमें पृथिवी सूर्यके सात ग्रहों (उस समय तक ज्ञात)में-से एक ग्रह मात्र थी। उसका शिष्य, गिओरदानो ब्रूनो उससे भी एक कदम और आगे बढ़ गया। उसने यह घोषणा की कि 'ब्रह्माण्डमें असंख्य सूर्य हैं। इसलिए पृथिवी जैसे असंख्य ग्रह उनकी परिक्रमा करते हैं। और हो सकता है कि इनमें-से कुछमें मनुष्य सदृश प्राणी हों'। यद्यपि ब्रूनोको धर्मान्ध पादरियोंने फाँसीपर लटका दिया, पर उसकी यह धारणा आज भी जीवित है।

दूरदर्शीके आविष्कारके बाद मनुष्यके दृश्य क्षेत्रमें बहुत अधिक विस्तार हुआ। अब ग्रह केवल प्रकाशबिन्दु ही न रह गये थे। उनके अध्ययनोंसे खगोलशास्त्रियोंको सनसनीखेज जानकारियाँ प्राप्त हुईं। इन जानकारियोंमें अपनी उर्वरा कल्पनाका मिश्रण करके उन्होंने अत्यन्त विचित्र धारणाएँ बनानी शुरू कर दीं। जिसके फलस्वरूप ग्रहोंको जीवनसे भरपूर पिण्ड माननेकी प्रथा चल पड़ी।

मंगलवासी अधिक बुद्धिमान् ?

इस समय तक १८वीं शताब्दी आरम्भ हो चुकी थी और खगोलशास्त्र

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रांगणमें याहोन एलर्ट बोडका पदार्पण हो चुका था। एक ओर जहाँ बोडने ग्रहोंकी दूरी अनुमाननेके लिए अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया, वहाँ उसने यह भी सुझाया कि ग्रहोंपर निवास करनेवाले जीवोंका बौद्धिक स्तर भी उनकी सूर्यसे दूरीके अनुपातमें बढ़ता है। इस प्रकार इस धारणाको जन्म मिला कि मंगलके जीवधारी पृथिवी (जो मंगलकी अपेक्षा सूर्यके अधिक निकट हैं)के जीवधारियाकी तुलनामें अधिक बुद्धिमान् होंगे।

मंगलपर अधिक बुद्धिमान् मनुष्य (?)के निवास करनेकी कल्पनाको १८७७ में इटालियन खगोलशास्त्री गिओवनी विरगिनिओ शियापेरेलीकी सनसनीखेज पूर्ण घोषणासे कि 'मंगलकी सतहपर उन्हें उसके अन्धेरे भागोंको जोड़नेवाली नहरें (कैनाली) दिखी हैं', बहुत सम्बल मिला। यद्यपि ऐसा अनजाने ही, मात्र अनुवादकी गलतीसे हो गया; इतालवी भाषामें 'केनाली'का अर्थ होती है 'खाई', पर अंग्रेजीमें वह 'नहर' वन गया। इस घोषणाने खगोलशास्त्रियोंमें ही नहीं वरन् जन-साधारणमें भी तहलका मचा दिया। लोग अजीब-अजीब अटकलें लगाने लगे। तत्कालीन अमेरिकी राजनय पर्सीवाल लावेल तो इस घोषणासे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने मुख्य रूपसे मंगलका ही अध्ययन करनेके लिए एरीजोना मरुस्थलमें फ्लेगस्टाफ नामक स्थानपर एक वेधशाला ही स्थापित कर दी।

लावेलको मंगलपर सैकड़ों नहरें मिलीं और शीघ्र यह उत्साही खगोलशास्त्री इस निष्कर्षपर पहुँच गया कि मंगलमें ही अत्यधिक सभ्य आदमी निवास करते होंगे। इस भ्रान्तिको फैलानेमें एच० जी० वेल्सने भी योग दिया। उन्होंने अपने उपन्यास 'दि वार आफ दि वर्ल्ड्स'में मंगलवासियोंका ऐसा खाका खींचा कि अधिकांश पाठक उसे वास्तविक घटना समझ बैठे। उसके बाद तो उनके हमनाम, ओरसन वेल्सने १९३८-में अपने रेडियो नाटकमें अन्तरिक्षवासियोंके पृथिवीपर हमलेका इतना वास्तविक दृश्य प्रस्तुत किया कि अनेक श्रोता बड़ी कठिनाईसे यह समझ पाये कि वह मात्र नाटक था।

प्रयोगशालामें पुष्टि

आज अन्तरिक्षमें जीवधारियोंकी उपस्थितिके समर्थक वैज्ञानिकोंके मतकी पुष्टि प्रयोगशालीय अनुसन्धानोंमें हो चुकी है। इन अनुसन्धानोंसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पृथिवीपर जीवनके उद्भाव सम्बन्धी क्रियाएँ, जो कुछ वैज्ञानिकोंके मतानुसार आजसे लगभग ४.६ करोड़ वर्ष पूर्व, धरती आरम्भके जन्मके तुरन्त बाद हुई, को समझनेमें वैज्ञानिकोंको बहुत सहायता मिली है। यूरे, स्टेनले मिलर, सिडनी फाक्स, साइरिल पोन्नेम्पेरुमा, जॉन, ओरा, ओपरिन आदिने उन श्रृंखला रासायनिक-क्रियाओंको पुनः उत्पादित करनेमें महत्वपूर्ण योग दिया। जिनके फलस्वरूप हाइड्रोजन, अमोनिया, मीथेन और जलवाष्पसे घिरी आदि पृथिवीपर कालान्तरमें पृथक् जीवका उद्भव हुआ था। इन प्रयोगोंसे जीवनके उद्भवके विषयमें वैज्ञानिकोंको जो ज्ञान हुआ उसे पृथिवीपर प्रति वर्ष हजारोंकी संख्यामें गिरनेवाली उल्काओंपर परखा जा चुका है।

वैज्ञानिकोंका मत है कि वे रासीयनिक प्रतिक्रियाएँ जिनसे अन्तमें पृथिवीपर जीवधारियोंकी उत्पत्ति हुई, अन्तरिक्षके अन्य पिण्डोंपर भी हुई हैं और अब भी हो रही हैं। इस परिकल्पनाके आधारपर अनेक अनुसन्धान किये गये, वहुत सी खोजें हुईं और अन्तमें १९७०में श्रीलंकामें जन्मे पोन्नाम्पेरुमाने आस्ट्रेलियामें गिरी एक उल्कामें १७ विभिन्न एमिनो अम्लोंकी उपस्थिति सिद्धकर दिखायी। यद्यपि पोन्नाम्पेरुमा यह बात मानते हैं कि हाथसे पकड़ने भरसे किसी भी वस्तुपर एमिनो अम्ल आजाते हैं, पर उन्होंने इस बातके प्रमाण दिये हैं कि उन्हें एमिनो एसिड उल्कासे ही प्राप्त हुए थे।

भिन्न प्रकारके जीव :

एमिनो एसिडोंकी संरचना दो प्रकारकी हो सकती है। ये दोनों संरचना दर्पण प्रतिबिम्ब (मिरर इमेज) होती हैं। पृथिवीके प्राणियोंमें वामवर्त्ती (उनमें-से गुजरनेवाली प्रकाश किरणें बायीं ओर झुक जाती हैं) एमिनो एसिड उपस्थित होते हैं पर उलकाओंमें ऐसे एमिनो एसिड पाये गये हैं जिनमें कुछ वामवर्ती और दक्षिणवर्ती थे। स्पष्ट है कि दक्षिणवर्ती एमिनो एसिड अन्तरिक्षसे ही आये हैं।

अब प्रतिदिन ऐसे प्रमाणोंकी संख्या बढ़ रही है जो यह बताते हैं कि सौर परिवारके बाहर भी जीवधारी मौजूद हैं। १९६८में कैलीफोर्निया विश्वविद्यालयके वैज्ञानिकोंको आकाश गंगाके खगोलीय पिण्डोंका रेडियो दूरदर्शीसे अध्ययन करनेके दौरान अमोनिया अणुओंसे उत्सर्जित होनेवाले विकिरणोंका आभास हुआ। विकिरणोंके प्रभाव स्वरूप प्रत्येक

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किस्मके अणु विशिष्ट संकेत उत्पन्न करने लगते हैं। इनकी मददसे अणुओंको भली-भाँति पहचाना जा सकता है। अन्तरतारकीय स्थलोंमें किसी स्थायी अणुके पाये जानेका यह पहला अवसर था। उसके बाद, अब तक लगभग दो दर्जन ऐसे अणुओंका पता चल चुका है। इनमें कार्बन मोनोऑक्साइड, पानी, फार्मल्डीहाइड भी शामिल है। निश्चय ही इनमें-से अनेक जीवनके लिए आवश्यक हैं। इनकी खोजसे यह आभास होता है कि सुदूर अन्तरिक्षमें कदाचित् अब भी ऐसी भौतिक-रासायनिक क्रियाएँ हो रही हैं जैसी पृथिवीपर जीवोंके उद्भव हेतु हुई थीं।

पर इससे यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकाला जा सकता कि ब्रह्माण्डके किसी सुदूर खगोलीय पिण्डपर पनपनेवाला जीवन पृथिवीके जीवनके सदृश ही होगा। उसका निर्माण निश्चय ही एकदम भिन्न पर्यावरणसे और कदाचित् विभिन्न प्रकारके रासायनिक नियमोंसे प्रभावित हो सकता है। कार्नेल विश्वविद्यालयके डा० कार्ल सेगनके मतानुसार 'यदि पृथिवीका निर्माण एक बार फिर आरम्भ किया जाये और यदि उसे वही भौतिक अवस्थाएँ प्रदान की जायें, जो उसके निर्माणके समय थीं तब भी हमें मनुष्य सदृश कोई जीवधारी कभी भी प्राप्त नहीं होगा।' प्राणियोंकी विकास श्रृंखलामें अनेक दुर्घटनाएँ और संयोग हुए हैं। उन्हींके फलस्वरूप मनुष्य विकसित हो पाया है।

ग्रह ही जीवनसे युक्त ?

अन्तरिक्षमें जीवनकी सम्भावनाके बारेमें कुछ वैज्ञानिक चाहे कितने ही उत्साही क्यों न हों यह निर्विवाद सत्य है कि अन्तरिक्षमें केवल कुछ ग्रहों अथवा उपग्रहोंपर ही जीवधारी उपस्थित हो सकते हैं। अन्तर-तारकीय अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले मुक्त अणुओं अथवा ऊर्जा उत्पन्न करनेवाले तारोंमें किसी प्रकारका जीवन असम्भव है। पर ग्रह सौर परिवारके बाहर भी पाये जाते हैं और हमारी आकाश गंगाके खरबों तारोंके अवश्य ही ऐसे ग्रह हो सकते हैं जिनपर किसी न किसी रूपमें जीवन विद्यमान हो। सम्भाव्यता (प्रोबेबिलिटी)के गणितीय नियम मात्र सौर परिवारमें जीवनकी उपस्थितिको झुठलाते हैं।

सौर परिवारके बाहर ग्रहोंकी उपस्थितिके स्पष्ट प्रमाण मिल चुके हैं। 'बर्नार्डका तारा' जो सूर्यका निकटतम पड़ोसी है, (केवल ६ प्रकाश-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्ष दूर)का लड़खड़ानेका अध्ययन करनेपर खगोलशास्त्री इस परिणाम-पर पहुँचे कि उसके वृहस्पति और शनि जैसे वड़े ग्रह होने चाहिए।

ऐसे ग्रहों अथवा उपग्रहोंकी संख्या सम्भवतया कितनी होगी, जिन-पर जीवनके पाये जानेकी सम्भावना है ? जीवनसे युक्त होनेके लिए किसी भी ग्रहके लिए यह जरूरी है कि वह ऐसे तारेकी परिक्रमा करता हो जो कई अरब वर्षोंसे स्थिर तीव्रतासे चमक रहा हो और साथ ही ग्रहको तारेके 'आवास योग्य क्षेत्र'में—जहाँ तारकीय विकीरण जीवनके लिए न तो अत्यन्त तीव्र हो और न ही अत्यन्त क्षीण—स्थित होना चाहिए। इन तथ्यों तथा नये तारोंके निर्माण (आकाश गंगामें प्रति वर्ष एक तारा वनता है) और उन तारोंकी संख्या जिनके ग्रह हो सकते हैं (लगभग आधे)को ध्यानमें रखकर गणना करनेपर अनुमाना जाता है कि आकाश गंगामें ही एक लाखसे लेकर दस लाख तक ऐसे ग्रह अवश्य होने चाहिए जिनमें सभ्य और प्रगतिशील जीवधारी निवास करते हों। इन ग्रहों के बीचकी दूरी औसतन कुछ सौ प्रकाश-वर्ष होगी।

पर वैज्ञानिक यह मानते हैं कि जीवों, सभ्य जीवोंसे युक्त ग्रहोंकी संख्या उक्त संख्यासे कहीं अधिक या कम हो सकती है। यह संख्या सभ्य समाजकी जीवनावधि पर निर्भर है। निराशावादी व्यक्ति यह रेडियो संकेत प्रेषित करनेकी क्षमता उपलब्ध कर के, केवल ४०-५० वर्ष ही जीवित रह सकता है। क्योंकि वह शीघ्र ही अपने नाभिकीय विस्फोटोंमें स्वतः नष्ट हो जायेगा अथवा प्रदूषण द्वारा स्वयंको समाप्त कर लेगा। इस धारणाके अनुसार अनुमान लगानेसे आकाश-गंगामें सभ्य और प्रगतिशील जीवोंसे युक्त पिण्डोंकी संख्या बहुत कम आती है। पर प्रकृति इतनी निराशावादी नहीं है।

मलेरिया ज्वर

श्रीरामचन्द्र आचार्य, ए. एम. एस.

परिचय—

यह नित्य या पारीसे आनेवाला ज्वर होता है, जो मच्छरोंके काटनेसे होता है। इसके कारण प्लाजमोडियम नामक जीवाणु होते हैं। यह ज्वर एनाफिलीज जातिके मच्छरोंसे प्रसारित होता है। मलेरियासे पीड़ित व्यक्तिको जब मच्छर काटता है तो उसका रक्त अपनी सूँड़से चूस लेता है। रोगीके रक्तमें जीवाणु रहते हैं, अतः रक्तके साथ ही

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवाणु भी मच्छरमें प्रविष्ट हो जाते हैं। जब यह मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्तिको काटता है तो जीवाणुओंको लार द्वारा उसके रक्तमें प्रविष्ट कर देता है। रक्तमें जीवाणुओंके प्रविष्ट होनेके ८-१० दिन पश्चात् ज्वरके लक्षण प्रतीत होने लगते हैं।

प्रकार—

मलेरिया दो प्रकारका होता है। १. इन्टर मिटेन्ट २. रेमिटेन्ट।

१. इन्टरमिटेन्टमें ज्वर शीत लगकर आता है और कुछ घण्टे रहकर पसीना देकर उतर जाता है।

२. रेमिटेन्टमें ज्वर पूरा उतरता नहीं है. कुछ कम होकर पुनः शीत देकर तेज हो जाता है।

इन्टरमिटेन्ट भी तीन प्रकारका होता है। १. २४ घण्टे पश्चात् फिर शीत लगकर आता है। २. ४८ घण्टे पश्चात् आता है। इसे इकातरा कहते हैं। ३. ७२ घण्टे पश्चात् आता है इसे तिजारी कहते हैं।

लक्षण—

इस ज्वरकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। ज्वर आनेसे पूर्व रोगीको सिरदर्द, घबराहट इत्यादि लक्षण होते हैं, फिर एकाएक शीत लगकर ज्वर हो आता है।

१. शीतावस्था—इस अवस्थामें रोगीको तेज जाड़ा लगता है वह काँपता है और दाँत कटकटाता है।

२. उत्तापावस्था—पूर्व अवस्था समाप्त होनेपर रोगीको उत्ताप (गरमी) मालूम पड़ता है, चेहरा व आँखें लाल हो जाती हैं। नाड़ीकी गति तेज हो जाती है। प्रायः १०३ डिग्रीसे १०५ डिग्री तक ताप चला जाता है।

३. स्वेदावस्था—कुछ समय पश्चात् पसीना होने लगता है पहले ललाटपर पसीना आता है, फिर क्रमशः सारे शरीरसे पसीना बह निकलता है। ज्वर नार्मल या उससे भी नीचे आ जाता है।

ज्वरके पश्चात् रोगीको भारी कमजोरी मालूम होती है और कुछ आराम मिलनेसे निन्द्रा आजाती है।

निदान—

डीयाग्नोसिस—तीनों अवस्थाओंको देखकर निदान सरल होता है। क्रमशः आनेवाला ज्वर शत-प्रतिशत मलेरिया होता है। घातक या निरन्तर बने रहनेवाले ज्वरका निदान कठिन होता है। ऐसी अवस्थामें रक्तकी परीक्षा करनी होती है। यदि रक्तमें मलेरियाके जीवाणु उपस्थित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हों तो मलेरिया निश्चित किया जाता है। एक सरल उपाय यह भी है कि दो बार नीवाक्विनका इन्जेक्शन या तीन दिन तक नीवाक्विन या क्लोरेक्विनकी गोलियाँ देनेपर भी ज्वर न उतरे ता समझना चाहिए कि मलेरिया नहीं है कोई अन्य ज्वर है।

उपद्रव—

ज्वर अधिक दिनोंतक रह जाये तो प्लीहा वृद्धि (स्प्लीन इनलार्जमेन्ट) यकृद् वृद्धि (लीवर इनलार्जमेन्ट) रक्ताल्पता (एनाइमिया) शिरःशूल हो जाता है।

चिकित्सा प्रतिरोधक—

मच्छरोंसे वचनेके लिए मशहरींका प्रयोग करें और घरोंमें डी० डी० टी०का छिड़काव करें। गूगल, छाड़ छड़ीला, मुनक्कार, घी तथा बूँरेको मिलाकर नित्य अग्निमें हवन करें।

यह ज्वर श्रावण माससे लेकर कार्तिक मासतक फैलता है। अतः इस मौसममें नीवक्विनकी २ गोली या क्लोरेक्विनकी २ गोली प्रति सप्ताह जलसे सेवन करें। गोलियाँ खाली पेट न लेकर कुछ नाश्ता करके लेवें या तुलसी पत्र ११ व ३ काली मिर्च नित्य सेवन करें।

आरोग्य चिकित्सा—

मलेरियाका निदान होनेपर जिस समय तेज बुखार हो रोगीको घवराहट व सारे शरीरमें दर्द हो रहा हो, उल्टियाँ हो रही हों तव अल्ट्राजिनकी १ गोली+ग्लूकोज ३ ग्राम+खानेका सोड़ा १ ग्राम+३ बूँद अमृतधारा मिलाकर जलसे दे दें। कुछ समय पश्चात् ही पसीना आकर दर्द व बुखार कम हो जायेगा। यदि उल्टियाँ फिर भी बन्द न हों तो सीक्विलकी १ गोली पानीसे देवें, साथमें नीबूके रसमें बूरा या मिश्री व जल मिलाकर पिलावें। नीबूमें सेंधानमक व काली मिर्च बुरकाकर गरम करके भी दे सकते हैं।

ज्वरको रोकनेके लिए कामाक्विन १ गोली या नीवाक्विन २ गोली या क्लोरेक्विनकी २ गोली ३ घण्टेके अन्तरसे २ बार देवें। निवाक्वीन या क्लोरोक्वीन ५ सी० सी० का इन्जेक्शन कूल्हेमें मांसगत लगवा लें। इन्जेक्शन लगाते समय शुद्धिकरणका पूरा ध्यान रक्खें, वरना पकनेका भय रहता है। तत्पश्चात् गोलियाँ २ बार ३-४ दिन तक लेते रहें। आगे लौटकर ज्वर न आवे उसके लिए २ गोली नीवाक्विन प्रति सप्ताह लेते रहें।

क्विनाइनके विष लक्षण—

तीन चार दिन तक क्विनाइन देनेसे चक्कर, कानोंमें शब्द होना,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

घवड़ाहट, बार बार मूत्रोत्सर्ग होना इत्यादि लक्षण होते हैं। इसके लिए बूरेमें अमृतधारा डालकर जलसे लेवें, मोसम्बीके रसमें ग्लूकोज मिलाकर पीवें, नीबूकी शिकंजबीन लेवें तथा दूध+मिश्री प्रचुर मात्रामें लेनेसे सब लक्षण शान्त हो जायेंगे।

जीर्ण ज्वरकी चिकित्सा—

(१) महा सुदर्शन चूर्ण उसे ६ ग्राम तक प्रातः ८ बजे व सायंकाल ३ बजे जलसे लेवें।

(२) अमृतारिष्ट दो-दो बड़ी चम्मच भरकर समान जलके साथ चूर्णके २ घण्टे पश्चात् देवें।

यह तो हुई रोगकी आधिभौतिक चिकित्सा, इसके साथ आधिदैविक चिकित्सा निम्नलिखितानुसार ईश्वरपर विश्वास रखकर करें तो रोगसे शीघ्र ही मुक्ति मिल जायेगी और वेदनाका भी अनुभव नहीं होगा—

प्रत्येक रोगकी औषधि सेवन करनेके पूर्व निम्नलिखित श्लोक बोलें—

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजम्।
नश्यन्ति सकलाः रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

और हृदयमें भावना करें कि प्रभुकी कृपासे रोग नष्ट हो रहा है, उनका नामोच्चारण, रूप व गुणोंके चिन्तन सहित अधिकसे अधिक करें।

पथ्य—

ज्वर कालमें केवल फल, मुनक्का, दूध इत्यादि का सेवन करें।

ज्वर समाप्त होनेपर पहिले मूँगकी दालका यूष व दूध फल लेवें। तत्पश्चात् लौकी, तुरई, टिन्डे; परवलको दलिया, बिना घी लगा हुआ गेहूँ का फुलका, दूध, इत्यादि देवें।

खुराक तथा परिश्रम शनैः शनैः बढ़ावें। यदि कब्ज मालूम पड़े तो पालक या बथुवाका साग लेवें या दूधमें २१ मुनक्का उबालकर लेवें। यदि इससे भी पेट साफ न हो तो छोटी हरड़का चूर्ण ४-५ ग्राम +काला नमक १½ – २ ग्राम मिलाकर रात्रिको सोते समय जलसे दे दें। प्रातः शौच खुलकर हो जायेगा।

शरीरकी स्वच्छता—

ज्वर कालमें उष्ण जलसे तौलिया भिगोकर शरीर पोंछ दें और ज्वर समाप्त होनेपर २-३ दिन उष्ण जलसे स्नान करें, तत्पश्चात् शीतल जलसे। दांत व जीभकी सफाई भी मञ्जन या टुथपेस्टके द्वारा करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Inspiring anecdotes from Guru Nanak's Life

By : S. K. Tandon

Guru Nanak was on a visit to Multan, which at that time was full of Pirs and Fakirs. One of the more famous of them was the Muslim Fakir Bahauddin. When he heard of Guru Nanak's arrival he sent him a bowl full to the brim with milk. Guru Nanak understood the symbolism, which was that Multan was already full of Pirs and Fakirs and that there was no room for one more.

THE CHAMELI FLOWER

Guru Nanak gave a suitable reply. He put a Chameli flower in the milk and returned the bowl. The purpose was to convey to Bahauddin the message that Guru Nanak had not come to displace any body in Multan. He would float like the flower in the bowl of milk, and give a sweet fragrance to all. Like a true saint, Guru Nanak refused to indulge in unnecessary personal controversy, and would not hurt or displace anybody; all he wanted was to propagate his message of love.

LALO'S BREAD

In the course of his constant tours Guru Nanak once reached Amina. He met a carpenter named Lalo. Both were impressed by each other and Lalo got converted to his cult, whereupon Guru Nanak stayed with him.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

The headman of the town was Malik Bhago, an oppressor who had accumulated money by squeezing the people. Malik Bhago threw a party and invited Guru Nanak to it, asking him why he had preferred to stay with lowly and poor Lalo and not with him.

Guru Nanak replied that he did not consider anybody high or low by reason of affluence or poverty. Moreover, he would not accept food from him (Malik Bhago) because his bread was prepared from the blood of the innocent and poor. Malik Bhago flew into a rage and challenged him to prove this. Guru Nanak immediately sent for a crust of bread from Lalo's house and a crust of bread from Malik Bhago's house. He took the two crusts in his hands and squeezed them, and lo and behold, Malik Bhago's bread yielded blood and Lalo's milk.

DUNICHAND'S RICHES

In a similar case. Guru Nanak converted a rich trader named Dunichand. Dunichand was a rich money-lender of Lahore and when Guru Nanak reached there he came with his wife to bow to him. Guru Nanak, instead of giving him blessings, gave him a needle and asked him to return it to him in heaven.

Dunichand was aghast. He asked Guru Nanak how he could carry the needle to the other world. Guru Nanak was waiting for just this opportunity. "In that case." He asked Dunichand, "why are you accumulating all that money? All you can take with you to the other world is love of God."

Dunichand asked him how he could get love of God, and Guru Nanak replied that the only way was to listen to the sermons of saints and seek their blessings. Guru Nanak's apt example of the needle so impressed Dunichand that he distributed all his riches among the poor and the needy and became a disciple.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

NAMAZ AND DEVOTION

Guru Nanak was staying at Sultanpur, and the Muslims of the place, to test his claim of impartiality, asked him to say the Namaz. Guru Nanak promptly agreed and went to the mosque along with the leaders of the Muslims of the place. Everybody stood up to say the Namaz and then bent down in ritual submission. But Guru Nanak remained standing. The Kazi was furious at this and asked him for an explanation.

Guru Nanak refused to be provoked. He explained that prayer of God had no meaning unless the mind was devoted and concentrated on worship. "But you," he pointed to the Kazi "were far from concentrating. On the contrary while you said the Namaz with your lips your mind was all the time troubled by the thought that your calf. Which you had left loose might get drowned in a well. Isn't it so?" True enough, the Kazi had been thinking of the calf and felt ashamed of himself.

GOD'S HOUSE

During his travels in search of truth Guru Nanak went as far as Mecca. One day an Indian Muslim named Jivan who had gone for haj found a Fakir sleeping with his feet turned to words Kaaba, which is forbidden among Muslims since kaaba is supposed to be God's home. The Indian Haji was furious and shouted : "O Fakir, aren't you ashamed of sleeping with your feet towards the Kaaba?" But the Fakir didn't move. A sizable crowd collected and a large number of devoted Muslims shouted for the Fakir's blood.

The Fakir was still unmoved. He continued to lie with his feet pointing towards the Kaaba and said: 'Don't be angry. If my feet are pointing towards God's home, please lift them and turn them any side in which you think God doesn't exist." The assembled crowd was speechless. For, where could God not be? The Fakir was none other than Guru Nanak, dressed

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

in the black garb of a Muslim Fakir.

KAROON'S TREASURE

Karoon's treasure is famous, Karoon was a famous Arab Sultan who had enormous wealth. His full name was Hamid. Karoon and he was a contemporary of Guru Nanak.

Karoon was a tyrant and had squeezed every pie that any body in his kingdom had and thus amassed an enormous treasure. As it happened, Karoon was on pilgrimage to Mecca when Guru Nanak was there. Seeing this Fakir and being impressed by him, Karoon asked him how he could carry his riches along with him when he died.

Guru Nanak replied: "Yes your treasure can go with you if you distribute it among the poor. This way, though you will lose the treasure immediately, you will regain it when you reach heaven. If you don't do this, you will have to leave your treasure behind when you go to the other world."

Karoon understood and distributed all his ill-gotten but famous collection of riches among the poor and the needy.

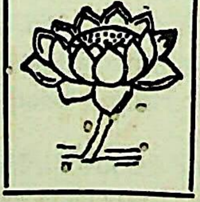

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

FLATTER YOUR FEMININITY

WITH

KHATAU VOILES

IN

A Refreshingly Original Array

of

DESIGNS

The Khatau Makanji Spg.

&

Wvg. Co. Ltd.

LAXMI BUILDING

6-SHOORJI VALLABHDAS MARG

FORT : BOMBAY-400 038

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ue bl
'चन्दा णि'

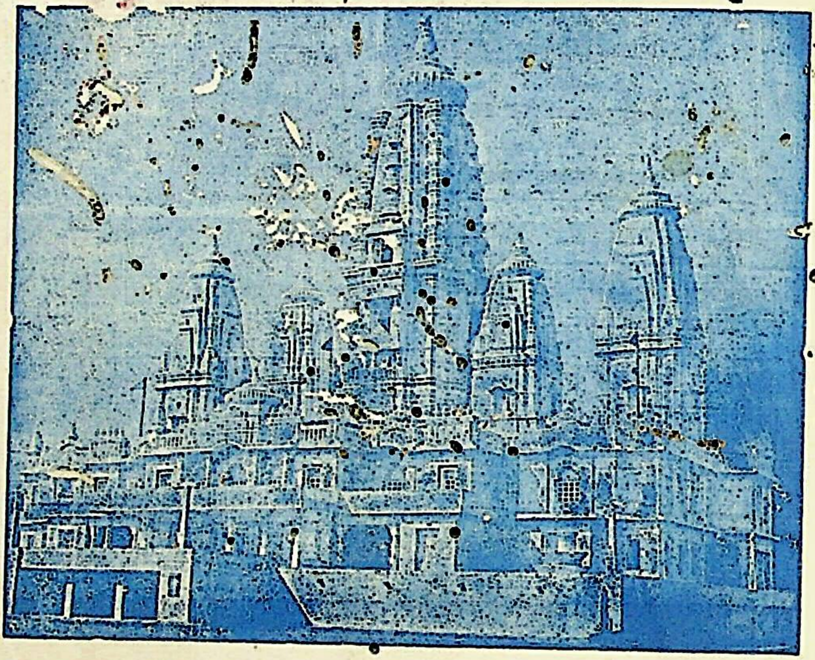

हर कार्य में ईश्वर का ही स्मरण करो

कुछ ऐसे हैं जो ईश्वरोपासना में विश्व को भुला देते हैं, कुछ ऐसे दुनियादार हैं जो ईश्वर को ही भूल जाते हैं पर जे०के० में हम हर काम में ईश्वर का स्मरण करते हैं और यही हमारी सफलता की कुन्जी है।

"कर्म ही पूजा है"—जैसे तथ्य को चरितार्थ करने के लिए हमने अच्छा वातावरण ही उत्पन्न नहीं किया अपितु ऐसे पुण्य स्थलों का निर्माण तथा सामाजिक एवं धार्मिक संगठनों का गठन भी किया है।

इस प्रकार हमने आध्यात्मिक, नैतिक एवं बन्धुत्व की भावना को लिये हुये जीने की कला सीखने में योगदान किया है।

JK

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन
राष्ट्रीय दक्षता एवं व्यवसायिकता का सामंजस्य

सत्साहित्य-प्रकाशनट्रस्ट, वम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा आनन्दकानन प्रेस, सीके. ३६/२० वाराणसीसे मुद्रित

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi